श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष-८ मार्च-१९८९ अंक-३

Shri Ramakrishna Ashram Lib.
No. 291 819 ?
Rajkot.

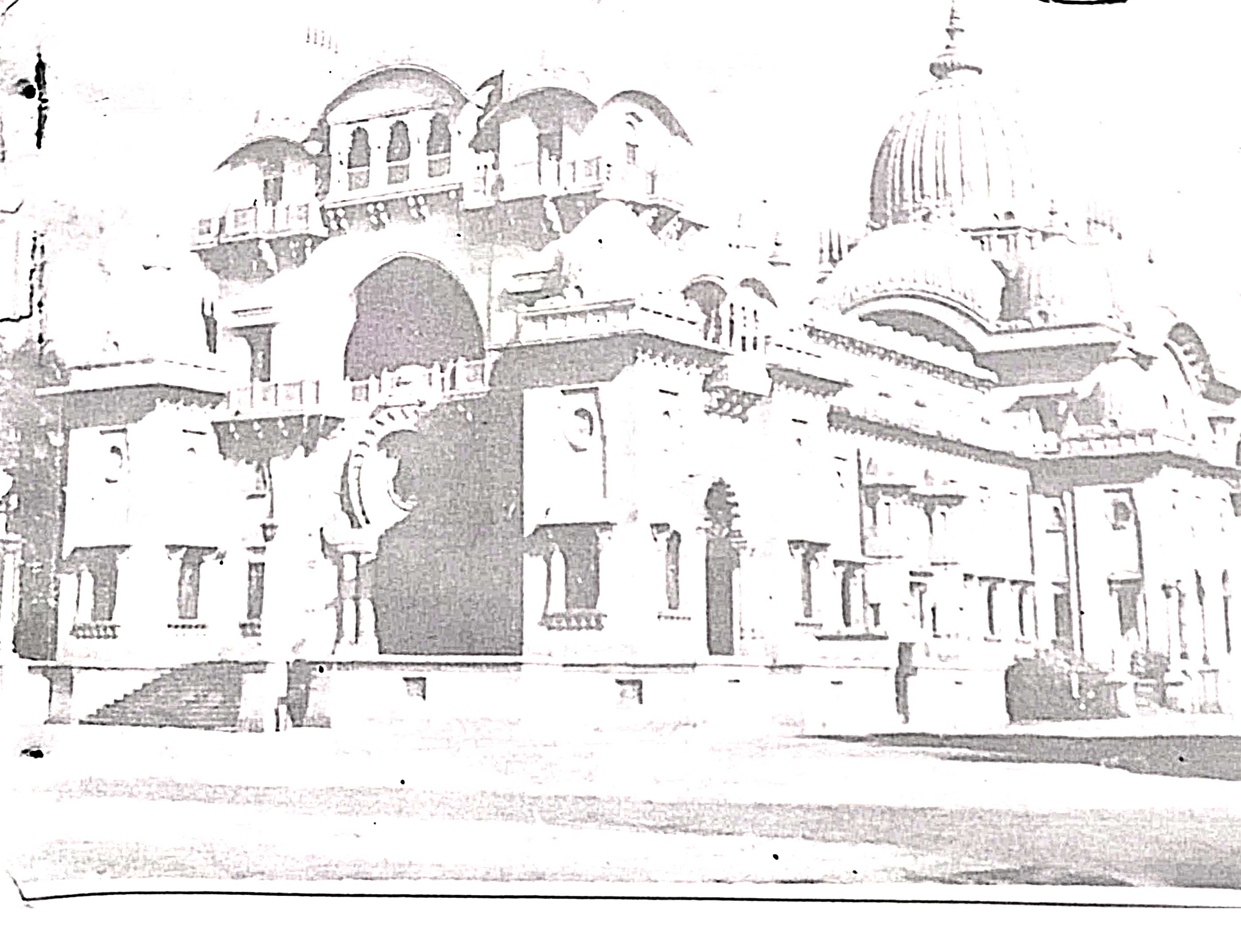

फार्म—४

(नियम ८ देखिए)

विवेक शिखा

प्रकाशक का घोषणा पत्र

पत्रिका का नाम	: विवेक शिखा	सम्पादक का नाम	: डॉ० केदारनाथ लाभ
आवर्तता	: मासिक	क्या भारतीय नागरिक हैं।	: हाँ
प्रकाशन का स्थान	: रामकृष्ण निलयम् जयप्रकाश नगर छपरा (बिहार)	पता —	: रामकृष्ण निलयम् जयप्रकाश नगर छपरा (बिहार)
पत्रिका के स्वामी का नाम	: श्रीमती गंगा देवी	मुद्रक का नाम	: श्रीकान्त लाभ
क्या भारतीय नागरिक हैं	: हाँ	क्या भारतीय नागरिक हैं	: हाँ
पता —	: रामकृष्ण निलयम् जयप्रकाश नगर छपरा (बिहार)	पता—	: जनता प्रेस नया टोला पटना—४ (बिहार)

मैं गंगा देवी एतत् द्वारा घोषणा करती हूँ कि ऊपर दी गयी जानकारी मेरी दृष्टि में सही है।

ह० श्रीमती गंगा देवी
प्रकाशक

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		३
२. प्रार्थना		४
३. अविनाशी का जन्मोत्सव - सम्पादकीय संबोधन		३
४. हृदि सर्वस्य विष्ठितम्	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द	५
५. श्रीरामकृष्ण का मानवतावाद	स्वामी आत्मस्थानन्द	८
६ श्रीरामकृष्ण के तीन रूप	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१०
७. रामभक्ति और रामकृष्ण	श्री अनन्त प्रसाद शर्मा	१६
८. स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में		१९
९. रूस के विवेकानन्द अनुरागी : एक साक्षात्कार	स्वामी पूर्णात्मानन्द	२१
१० विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	३०
११. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३२

Shri Ramakrishna Ashram
No. 28/3/87
Rajkot

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ८ मार्च—१९८९ अंक — ३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय ।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

मैं जानता हूँ कि यदि कोई पहाड़ की गुफा में रहता हो, देह पर भभूत मलता हो, उपवास करता हो, अनेक प्रकार के कठोर तप करता हो परन्तु भीतर-भीतर उसका विषय की ओर मन रहता हो—कामिनी-काँचन में मन रहता हो—तो उसे मैं धिक्कारता हूँ। और जिसका कामिनी-काँचन में मन नहीं होता है—खाता पीता और मस्त घूमता है, उसे धन्य कहता हूँ।

(२)

विद्यारूपिणी स्त्री वास्तव में सहधर्मिणी है। वह स्वामी को ईश्वर-पथ में जाने में विशेष सहायता करती है। एक-दो बच्चे होने के बाद दोनों आपस में भाई-बहन की तरह रहते हैं। दोनों ही ईश्वर के भक्त हो जाते हैं—दास तथा दासी। उनकी गृहस्थी विद्या की गृहस्थी है। ईश्वर और भक्तों को लेकर सदा आनन्द मनाते हैं। वे जानते हैं, ईश्वर ही एक मात्र अपना है—चिर काल के लिए अपना।

(३)

मनुष्य स्वयं को पहचानने से भगवान् को पहचान सकता है। 'मैं' कौन है? हाथ, पैर, रक्त, मांस—इनमें से 'मैं' कौन है? इस तरह भली भाँति विचार करने पर दिखाई देता है कि 'मैं' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। जिस प्रकार प्याज का छिलका अलग करते जाओ तो छिलका ही छिलका निकलता जाता है, सार भाग कुछ मिलता ही नहीं, इसी प्रकार विचार करने पर 'मैं' पन के नाम पर कुछ भी नहीं मिलता। अन्त में जो बचता है वही आत्मा या चैतन्य है। 'मैं' 'मेरा' के दूर हो जाने पर भगवान् दर्शन देते हैं।

प्रार्थना

भवसागर-तारण-कारण हे ।
रविनन्दन-बन्धन-खण्डन हे ॥
शरणागत किंकर भीत मने ।
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥१॥
हृदिकन्दर-तामस-भास्कर हे ।
तुमि विष्णु प्रजापति शंकर हे ॥
परब्रह्म परात्पर वेद भणे ।
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥२॥
मन-वारण-शासन-अंकुश हे ।
नरत्राण तरे हरि चाक्षुष हे ॥
गुणगान-परायण देवगणे ॥
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥३॥
कुलकुण्डलिनी-घुम-भंजक हे ।
हृदिग्रन्थि-विदारण-कारक हे ॥
मम मानस चंचल रात्रदिने ।
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥४॥
रिपुसूदन मंगल-नायक हे ।
सुख-शान्ति-वराभय-दायक हे ॥
त्रयताप हरे तव नाम गुणे ।
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥५॥
अभिमान-प्रभाव-विमर्दक हे ।
गतिहीन-जने तुमि रक्षक हे ॥
चित शंकित वंचित भक्तिघने ।
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥६॥
तव नाम सदा शुभ-साधक हे ।
पतिताधम-मानव-पावक हे ॥
महिमा तव गोचर शुद्ध मने ।
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥७॥
जय सद्गुरु ईश्वर-प्रापक हे ।
भवरोग-विकार-विनाशक हे ॥
मन जेन रहे तव श्रीचरणे ।
गुरुदेव दया करो दीनजने ॥८॥

सम्पादकीय सम्बोधन

अविनाशी का जन्मोत्सव

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

आज फाल्गुन शुक्ल द्वितीया है। ९ मार्च, १९८९। बड़ा पावन है आज का दिन। १५४ वाँ जन्म-महोत्सव है। आज भागवान् श्रीरामकृष्ण देव का। किन्तु श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव! हैरान कर देता है एक प्रश्न। जन्म तो उसका होता है जिसका मरण होता है। **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च**—जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है, ऐसा श्रीकृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा है। किन्तु क्या श्रीरामकृष्ण जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़े हुए, जन्म और मृत्यु को वरन करने के लिए अभिशप्त सामान्य प्राणी थे? यदि वे ऐसे सामान्य प्राणी थे तो फिर उनके जन्मोत्सव का कोई अर्थ नहीं है। अगर वे नित्य हैं, अ—मृत हैं, अविनाशी हैं, तो उनका जन्म ही नहीं हो सकता। और अजन्मा का जन्मोत्व कैसा? हैरान कर देने वाली बात है।

इसे हमें समझना होगा। जो शाश्वत हैं, अविनाशी हैं नित्य हैं, सनातन और पुरातन हैं, उनका जन्म नहीं होता। वे प्रकट होते हैं। सूर्य का जन्म नहीं होता। वह नित्य और सनातन है। किसी देश-विशेष में जब रात्रि के अंधकार में वह ढँक जाता है तब भी वह अन्यत्र अपने प्रकाश में भास्वर हो चमकता रहता है। और जहाँ वह अंधकार में छिपा रहता है वहाँ प्रातः काल वह फिर प्रकट हो जाता है। सूर्य का आविर्भाव होता है, प्रकटीकरण होता है, जन्म नहीं। समुद्र है। असीम, अनन्त, अपार। उसमें लहरें उठती गिरती हैं। लहरों का उठना-गिरना मानो उनका जन्म लेना और मरना है। किन्तु सागर तो यथावत् रहता है। समुद्र से लहरें उत्पन्न होती हैं। लहरों से समुद्र नहीं उत्पन्न होता। किन्तु कभी कभी धनी रात में समुद्र हमें दिखाई नहीं पड़ता, लहरों का शोर सुनाई पड़ता है। इसका यह अर्थ नहीं कि समुद्र का अस्तित्व ही रात में नहीं रहता। रहता है, पर दीखता नहीं। भोर के प्रकाश में वह पुनः प्रकट हो जाता है। वह जन्म-मृत्यु से परे है।

श्रीरामकृष्ण जैसे परम पुरुष भी चेतना के महासागर हैं। उनका जन्म-मरण नहीं होता। वे अक्षर-अमृत पुरुष हैं। वे कभी छिप जाते हैं, कभी प्रकट हो जाते हैं। उनका प्रकटीकरण, आविर्भाव विश्व-मंगल के महाग्रंथ की प्रस्तावना या भूमिका होता है। उनके प्रकटीकरण का वह दिन, वह क्षण, वह मुहूर्त हमारे लिए उल्लास का ज्योति-ज्वार लेकर आता है। हम उस दिन की याद में आनन्द-सागर में डूबने-उतराने लगते हैं।

महापुरुष के जन्म के सम्बन्ध में शंका अर्जुन को भी हुई थी। गीता में इसका उल्लेख है। योग के सम्बन्ध में ज्ञान देते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था—मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना। किन्तु बहुत काल से यह योग पृथ्वी में लुप्तप्राय हो गया। तू मेरा भक्त, और प्रिय सखा है, इसलिए वही पुरातन योग आज मैंने तुम्हें बताया हैं। अर्जुन हैरान हो उठा। बोला - 'आपका जन्म तो अर्वाचीन है, अभी हाल का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है, तब मैं कैसेसमझूं कि कल्प के आदि में आप ही ने सूर्य से यह योग कहा था। कृष्ण ने समझाया—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममाया ॥ (४/६)

कि मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ।

अविनाशी के प्रकटीकरण का यही रहस्य है। इसीसे तुलसीदासजी ने श्रीराम के जन्म के विषय में लिखा—'भए प्रकट कृपाला दीन दयाला'

अविनाशी का यह प्रकट होना क्या सामान्य जन्म जैसा है? नहीं। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' यानी, हे अर्जुन, मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक हैं।

ईश्वर के जन्म-कर्म की दिव्यता और अलौकिकता को समझ लेने पर मनुष्य स्वयं मुक्त हो जाता है—यह भी श्रीकृष्ण का ही कथन है।

श्री रामकृष्ण के जन्म-कर्म भी दिव्य थे, अलौकिक थे। वे स्वयं के लिए नहीं, संसार के उद्धार के लिए, धर्म की स्थापना के लिए, मानव में ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा के लिए, जीव में शिव का बोध कराने के लिए एक नये मानव के रूप में अवतरित हुए थे। इसीसे वे सब के प्रभु थे सब के मंगल-विधाता थे, आर्त-परित्राता थे। अन्यथा उन्हें जन्म-मृत्यु से क्या लेना-देना?

हम उन नित्य अविनाशी परम प्रभु श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव मनाते हैं इसलिए कि हम उनको अपना आदर्श मानकर चलने का संकल्प उस दिन कर सकें। उन्हें अपने जीवन में ढालकर स्वयं को धन्यता में स्थित करने का प्रण कर सकें।

श्रीरामकृष्ण को हमें अपना आदर्श मानना ही पड़ेगा। स्वामी विवेकानन्द का कथन है—"राजनीतिक, सामाजिक या वाणिज्य किसी भी क्षेत्र के कोई भी आदर्श पुरुष सर्वसाधारण भारतवासियों के ऊपर कभी भी अपना प्रभाव विस्तार नहीं कर सकते। हमें चाहिए आध्यात्मिक आदर्श। उन्नत अध्यात्म राज्य के पारदर्शी महापुरुषों के नाम पर हमें सम्मिलित होना चाहिए—हमें मस्त हो जाना चाहिए। हमारे आदर्श पुरुष धर्मवीर होने चाहिए। श्रीरामकृष्ण में हमें एक ऐसा ही धर्मवीर—एक ऐसा ही आदर्श मिला है। यदि यह जाति उठना चाहती है तो मैं निश्चय पूर्वक कहूँगा, इस नाम से सभी को प्रेमोन्मत्त हो जाना चाहिए।"

श्रीरामकृष्ण के जन्मोत्सव का यही प्रयोजन है कि उस दिन उनके नाम से हम सभी प्रेमोन्मत्त हो जायँ, उन्हें अपना आदर्श पुरुष मानकर अपने जीवन को धन्यता के धाम की ओर ले जायँ। उन्होंने हम सब को आश्वासन की वाणी में कहा है—"तुम सब को चैतन्य प्राप्त हो"। हम श्रीरामकृष्ण का जन्म-महोत्सव मनाकर इसी चैतन्य की प्राप्ति के लिए मानो महाभिनिष्क्रमण करते हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण से मेरी प्रार्थना है कि अपने जन्मोत्सव के अवसर पर हम सब के लिए चैतन्य की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने की अहेतुक कृपा करें। जय श्रीरामकृष्ण!

हृदि सर्वस्य विष्ठितम्

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन

[रामकृष्ण मठ और मिशन के वर्तमान महाध्यक्ष पूजनीय श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज ने श्रीरामकृष्ण आश्रम, पूर्णियाँ में ९ अक्टूबर, १९८५ को बंगला में जो प्रवचन दिया था उसकी अनुलिपि आश्विन, १३९५ के उद्बोधन की शारदीया संख्या में प्रकाशित हुई थी, जिसका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत लेख में किया गया है। रूपान्तरकार हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ]

हमलोग प्राय: कहते हैं कि हमलोगों के परिवेश, परिस्थिति से ऐसी अनेक तरह की बाधाएं-प्रतिकूलताएँ आदि उत्पन्न होती रहती हैं कि हमलोग भगवान को पुकार नहीं पाते। हम यह भूल जाते हैं कि हमलोग ही परिवेश की सृष्टि करते हैं, परिवेश हमलोगों की सृष्टि नहीं करता। एक ही परिवेश रहता है, किन्तु विभिन्न व्यक्तियों पर उसकी प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है। यदि ईश्वर के प्रति हमलोगों की एकान्त भक्ति और श्रद्धा रहे तो परिवेश की सारी प्रतिकूलताओं और विघ्नों को पार कर ईश्वर की ओर हम आगे बढ़ सकेंगे। वे अनन्त शक्तिमान हैं। उनकी शक्ति ही मनुष्य के भीतर संचारित होती है। हमलोग अपनी शक्ति से कुछ नहीं करते, उनकी शक्ति से ही सब कुछ करते हैं। हमलोग अपने क्षुद्र मन से उस शक्ति से स्वयं को वंचित करते हैं। उनकी कृपा सर्वत्र फैली हुई है, उस कृपा को ग्रहण करने के लिए हमलोग अपने हृदय को उन्मुक्त नहीं रखते। जैसे दिन के समय अपने घर के दरवाजे, खिड़की को बन्द कर यदि कहें कि घर अंधेरा है, वैसे ही प्रभु की प्रभा के सर्वत्र विकीर्ण होने पर भी हमलोग अपने हृदय का द्वार बन्द किये रखते हैं और कहते हैं—यहाँ आश्रम नहीं है, मठ-मन्दिर नहीं है, भगवान की कथा सुनने का कोई स्थान नहीं है। इस नेति वाचक मनोभाव के फलस्वरूप हम जो कुछ सोचेंगे सब 'नहीं' ही हो जायेंगे। और ईश्वर सर्वत्र हैं—इस आस्तिक्य बुद्धि को लेकर यदि हम अंधकारपूर्ण वन-अरण्य में निवास करें तो अरण्य भी उनकी प्रभा से आलोकित होगा। इस धारणा को हमें दृढ़ भाव से पकड़ कर रहना होगा। उन्हें अपने अन्तर में प्रतिष्ठित कर पाने पर ही हम यह देख सकेंगे कि बाहर भी वे सुप्रतिष्ठित हैं। वे सर्वव्यापी हैं, हमलोग अपनी अज्ञता के कारण उनकी उपस्थिति का अनुभव नहीं कर पाते हैं। इसी से कहता हूँ, परिवेश हमलोगों का प्रतिबन्धक नहीं है। परिवेश का हवाला देकर हमलोग स्वयं अपनी ही प्रवंचना करते हैं। श्रीरामकृष्ण के भावादर्श से यह बात स्पष्ट रूप से ही हमलोग समझ सकते हैं।

दो-चार व्यक्ति यदि श्रीरामकृष्ण के भाव को दृढ़ भाव से पकड़े रहकर अपना जीवन-यापन करें, तो उन लोगों के प्रभाव से धीरे-धीरे समग्र देश प्रभावित होगा। पावस की घटाएं जैसे मुक्त-हस्त से चारों ओर वारि-वर्षण करती हैं, उसी प्रकार ठाकुर की करुणा भी सर्वत्र बरसती रहती है। हमलोगों का दुर्भाग्य यह है कि हमलोग यह सोचते हैं कि वे हमलोगों पर कृपा नहीं करते हैं। उनकी करुणा का अनुभव करने के लिए हमलोगों

को जरूरत है—आन्तरिक आग्रह की, हृदय की प्रस्तुति की। हृदय में उनकी प्रतिष्ठा करनी होगी अन्यथा बड़े-बड़े मन्दिर, प्रतिष्ठान और आश्रम किसी काम में नहीं आयेंगे। ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) के उसी पद्मलोचन की भाँति—"तेरे मन्दिर में नहीं हैं माधव,/ घंटा, शंख फूँककर तू ने केवल शोर किया।" हृदय-मन्दिर में माधव की प्रतिष्ठा करने पर फिर शंख नहीं फूँकना पड़ता, स्वतः ही उनके अधिष्ठान का अनुभव किया जाता है। रुपये रहने पर हमलोग मन्दिर का निर्माण कर सकते हैं - कर सकते हैं मन्दिर में भगवान की संगमरमर की मूर्ति की प्रतिष्ठा। किन्तु उन्हें हृदय-मन्दिर में प्रतिष्ठित करने के लिए हृदय की ऐकान्तिकता चाहिए। कातर भाव से उनका आह्वान करना होगा जिससे वे हमलोगों के हृदय में स्वयं को प्रतिष्ठित करें। वे स्वप्रतिष्ठ हैं। उन्हें प्रतिष्ठित करेगा कौन? हमलोग यदि अपने अभिमान-अहंकार को त्यागकर उनके पाद-पद्मों में स्वयं को उत्सर्ग करें तो देखेंगे कि वे अपनी महिमा से सर्वत्र प्रतिष्ठित हैं। उनकी उज्ज्वल प्रभा से सभी दिशाएँ आलोकित हैं।

श्री श्री ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) भावमूर्ति हैं। वे व्यक्तिगत रूप से कोई प्रतिष्ठा नहीं चाहते। उन्हें कोई अधिक सम्मान या गौरव प्रदान करता तो वे संकोच का अनुभव करते थे। कहा करते थे : मैं कुछ नहीं। नाहं नाहं, तुँहू तुँहू। उनके भीतर सदा-सर्वदा वही परमात्मा या परमेश्वरी विराजती थीं, जिन्हें वे 'माँ' कहा करते थे। वही माँ उनके भीतर विराजित होकर अपने वराभयहस्त चारों ओर फैला रही हैं तथा हम सब को वर एवं अभय का दान दे रही हैं। ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) सर्व-शक्तिमान हैं, इस बात में यदि हमलोगों को विश्वास हो तो साथ ही साथ यह बोध भी होगा कि उनकी अपरिमेय शक्ति हमलोगों की रक्षा करती है। उनका ज्ञान अनन्त है। वह हमलोगों के भीतर विकसित होने के लिए केवल सुयोग की अपेक्षा कर रहा है। उनकी ओर अपनी दृष्टि देने पर हमलोग समझेंगे कि वे अपनी वराभय मूर्ति के रूप में सर्वत्र विराजमान हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—"न मे भक्तः प्रणश्यति"—मेरे भक्त का कभी भी विनाश नहीं होता। ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) भी उसी प्रकार कहते हैं -यदि कभी देखो कि मन के भीतर कोई विकार आ रहा है, साधन-पथ में बाधा आ रही है, तो मन में सोचना कि मैं उनकी सन्तान हूँ। तब अपना दीनभाव, दुर्बलता चली जायगी।

उनके प्रति थोड़ी श्रद्धा का बीज वपन करने से वह धीरे-धीरे भक्ति-जल के सिंचन के द्वारा अंकुरित होकर पत्र-पुष्प से शोभित विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो जायगा। दूसरे की ओर दृष्टि नहीं डालकर सोचना होगा कि मैं क्या कर सकता हूँ। कहीं-कहीं हमलोग यह कहते सुनते हैं कि यहाँ ठाकुर के भाव के प्रति लोगों में वैसा कुछ खास आग्रह नहीं है, इसलिए चेष्टा करने पर भी यहाँ लोकसमागम नहीं होता। प्रसंगवश यह स्मरण होता है कि मद्रास मठ में स्वामी रामकृष्णानन्द* नियमित रूप से ठाकुर के विषय में विवेचना करते थे, पाठ करते थे। एक दिन जाकर वे देखते हैं कि एक भी व्यक्ति नहीं है। उन्होंने यथासमय पाठ करना आरम्भ कर दिया। कुछ देर बाद एक भक्त आये। देर से आने के कारण वे भीतर नहीं गये, बाहर ही खड़े रहे। इसके बाद पाठ समाप्त होने पर भीतर जा उन्हें प्रणाम कर कहा, यहाँ तो एक भी आदमी उपस्थित नहीं था महाराज, फिर आप किसे सुना रहे थे? रामकृष्णानन्दजी ने कहा: "मैं क्या तुमलोगों को सुनाता हूँ? मैं ठाकुर को सुनाता हूँ। तुमलोगोंमें से कोई नहीं था,

* श्रीरामकृष्ण के अन्यतम लीलापार्षद

यह सही है; किन्तु ठाकुर तो हैं। वे विश्व ब्रह्माण्ड से जुड़े हैं। उन्हें छोड़ देने पर सब शून्य है, और उन्हें यदि पकड़ा जाय तो सब पूर्ण है।" यह बात हमलोगों को सदैव याद रखनी होगी, भक्तों की संख्या के अनुसार विचार करने की जरूरत नहीं है। हमलोगों का कार्य है श्रद्धापूर्वक, विश्वास-पूर्वक उनके भाव का अनुशीलन करना। वह अकेले हो या अनेक लोगों के साथ हो। ठाकुर कहते हैं, फूल के खिलने पर मधुमक्खियाँ स्वयं आ इकट्ठी होती हैं, उन्हें निमंत्रण देकर बुलाना नहीं पड़ता। उनका भाव लेकर यदि एक व्यक्ति का जीवन किसी जगह पर विकसित हो तो उनके निकट चारों दिशाओं से पिपासु भक्तगण आकर इकट्ठे होते हैं। समाचार पत्रों में विज्ञापन देकर उन्हें सूचित नहीं करना पड़ता, वे स्वयमेव प्राणों के आकर्षण से चले आते हैं। वही आकर्षण यदि हमलोग अपने भीतर जगा पायें तो उसके बाद जो होना है, स्वयं होगा। इसीलिए प्रतिकूलता की बात हम नहीं सोचेंगे। हम सोचेंगे कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति ठाकुर को कितना अपना मान पाता है, हमलोगों के प्राण उनके भाव से कितना भावित हो पाते हैं। वे तो कृपा करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत हैं। उनकी ही बात है। कृपा की वायु तो बहती ही है, तू पाल तान दे। वायु बहती रहे किन्तु पाल नहीं तानने पर नाव आगे नहीं बढ़ पाती। हमलोग यदि पाल तान दें, अर्थात् उनकी कृपा का अनुभव करने के लिए हृदय-द्वार को उन्मुक्त कर दें तो हमलोगों का जीवन धन्य होगा और उनकी इच्छा होने पर उसी जीवन के माध्यम से वे अपने भाव का चारों ओर प्रसार करेंगे।

उनका कोई प्रचार नहीं करता, वे ही दूसरों को अपना यंत्र बनाकर अपने भाव का प्रचार करते हैं—इस बात को याद रखना होगा। हमलोगों का हृदय उनके आलोक से आलोकित हो, इसके लिए हृदय को खुला रखना होगा। उनके भाव को ग्रहण करने के लिए यदि मन में आग्रह, आकांक्षा रहे तो यही यथेष्ट है, और किसी बात की जरूरत नहीं है। इसके बाद जिस बात की आवश्यकता होगी, उसकी व्यवस्था वे स्वयं कर देंगे।

स्वामीजी ने जिसे सत्ययुग कहा है, जिस युग में ठाकुर के भाव प्रदीप्त हो झलमल कर रहे हैं, उस पवित्र युग में हमलोगों ने जन्म लिया है। किंचित् सचेतन होने पर ही हमलोग यह समझ पायेंगे कि ठाकुर के भाव आज सर्वत्र विस्तारित, प्रवाहित हो रहे हैं। उन भावों को ग्रहण करने के लिए हमलोगों को मात्र थोड़े आग्रह की आवश्यकता है। ऐसा होने पर हम देखेंगे कि उस अनन्तधाम में हम अनायास ही पहुँच गये हैं।

ठाकुर आये थे हमलोगों को पथ दिखाने के लिए, हमलोगों के पथ को उनके अपने जीवन के आलोक से आलोकित करने के लिए। हमलोगों के भीतर वे प्रेरणा प्रदान करेंगे, बल देंगे और देंगे हमलोगों को दिव्यदृष्टि, जिस दृष्टि से हम-लोग स्पष्ट रूप से अपना पथ देख सकेंगे।

●

श्रीरामकृष्ण का मानवतावाद

—स्वामी आत्मस्थानन्द

[रामकृष्ण मठ और मिशन के अन्यतम सह सचिव श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज के छः निबन्धों का संकलन "एक नतून मानुष' नामक पुस्तिका के रूप में उद्बोधन कार्यालय, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत निबन्ध उसी पुस्तिका से लेखक की अनुमति से सभार अनूदित है। अनुवादक हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ]

श्रीरामकृष्ण वचनामृत में बार-बार उच्चारित यह शाश्वत मंत्र—ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या : ईश्वर ही सार वस्तु है, और सब निस्सार है। श्रीरामकृष्ण के जीवन-पट पर विशेष रूप से हमलोग देखते हैं ईश्वर लाभ के लिए तीव्र व्याकुलता, जीव-जगत् का विस्मरण, निज देहाभिमान शून्यता, ईश्वर लाभ का परम आनन्द, नाना पथों और नाना मतों से ईश्वर का आस्वादन - समाधि, सविकल्प – निर्विकल्प। काशीपुर में उन्होंने आशीर्वाद दिया था; "तुम लोगों को चैतन्य प्राप्त हो"—भगवान को प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। अतएव ऐसे ईश्वर निष्ठ या ब्रह्म-निष्ठ अतीन्द्रिय राज्य के अतिमानव परमपुरुष श्रीरामकृष्ण और मानवतावाद परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। किन्तु अश्रुतपूर्व ज्ञानलोकोभ्दासित; भावमुख में स्थित उनके जीवन की वास्तविक घटनाएँ साक्ष्य देती हैं—"धृतसहजसमाधि चिन्मयं कोमलाङ्गम्" श्रीरामकृष्ण ही "वितरितु-मवतीर्णं ज्ञानभक्ति-प्रशान्तीः, प्रणयगलित चित्तं जीव दुःखासहिष्णुम्," 'भंजन-दुःखगंजन करुणा-घन, कर्म कठोर। प्राणार्पण जगत-तारण कृन्तन कलिडोर॥" भी हैं।

दक्षिणेश्वर के कचहरीघर की छत पर चढ़कर कातर क्रन्दन-विह्वल श्रीरामकृष्ण पुकारते हैं—"तुमलोग कहाँ हो, आओ।" माँ-गतप्राण भवतारिणी के पुजारी आज मनुष्य को अपने समीप पाने के लिए व्याकुल हैं। साधक जीवन का दिव्योन्माद "भास्वर भावसागर चिर उन्मद प्रेम-पाथार। भक्तार्जन-युगल चरण तारण-भव पार॥" हो गया है।

श्रीरामकृष्ण का दर्शन और उपलब्धि भव-तारिणी को एक भाव से देखकर ही समाप्त नहीं हुए। उनकी अनुभूति से उद्भासित हुई चैतन्यशक्ति—केवल भवतारिणी के रूप में नहीं, मायामय संसार की अन्तर्निहित चेतन सत्ता के रूप में नित्य प्रकाशित है। उनकी दृष्टि के सामने कोशाकुशी (पूजा के उपकरण), दरवाजा-चौकठ, पेड़-पत्ते, बिल्ली-मनुष्य – सभी चैतन्य सत्ता के प्रकाश के विभिन्न रूपों में दीख पड़ने लगे।

लोग फिर कीड़े मकोड़े नहीं रहे—जीव और शिव के अभेदत्व का बोध हुआ। श्रीमन्दिर की भवतारिणी और विभिन्न स्तरों के मनुष्यों में एक ही प्रकार है; इस चरम सत्यज्ञान से उनके समक्ष मानव और देवता में, किसी जड़ वस्तु और जीव में, नाले और नदी में किसी प्रकार का भेद नहीं रहा। श्रीरामकृष्ण की उपलब्धि ने उन्हें सर्वतो-भावेन द्वन्द्वमय जगत् से ऊपर उठाकर दिव्य चेतना

के राज्य में पहुँचा दिया। "ईशा वास्यमिद सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्"—श्रीरामकृष्ण ने प्रत्यक्ष किया—मन्दिर की माँ नहवत की माँ एवं उनकी पद सम्वाहनरता सारदा एक ही हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष किया—भवतारिणी पतिता के रूप में, मोहिनी के रूप में तथा और भी कई रूपों में झलक रही हैं। इसी से उन्होंने कहा था, "प्रतिमा में उनका आविर्भाव होता है और मनुष्यों में नहीं होगा? ......वे तो समस्त जीवों में ही हैं, तथापि मनुष्य के भीतर उनका अधिक प्रकाश है......।"

अवतार के जीवन का उद्देश्य अपनी उपलब्धि से ही समाप्त नहीं हो जाता। अवतार की जीवन-गंगा अपनी साधना और सिद्धि को व्याप्ति लोक कल्याण के हेतु मनुष्य में संचारित करने के लिए सहस्रधाराओं से प्रवाहित होती है। इसी से जो भवतारिणी के दर्शन के लिए आकुल हुए थे, उन्होंने ही अपने आविर्भाव को सार्थक करने के लिए दक्षिणेश्वर के छोटे कमरे से लोक संग्रह के निमित्त ऊँचे स्वर से कहा था, "प्रतिमा के द्वारा ईश्वर की पूजा होती है और जीवन्त मनुष्य के द्वारा क्या नहीं होती है? वे (ईश्वर) ही मनुष्य बनकर लीला करते हैं।" "और दान ध्यान दया कितनी! अपनी बेटी के विवाह में हजार-हजार रुपयों का खर्चा—और पास के घर के लोग भोजन नहीं पाते हैं, उन्हें दो दाना चावल देने में कष्ट होता है—बहुत हिसाब लगाकर देते हैं। लोग भोजन नहीं पाते हैं—इससे और क्या होगा, वे साले मरें या बचें, मेरे और मेरे घर के सब लोगों के अच्छे रहने से ही मतलब है। मुँह से कहता है जीवों के लिए दया!"

'हृदय कमल मध्ये राजितं निर्विकल्पं
सदसदखिलभेदातीतमेकस्वरूपम् ।
प्रकृति विकृतिशून्यं नित्यमानन्दमूर्तिं'—देव-मानव की यह कैसी अपूर्व व्यथा मानव के प्रति है। यह मानवतावाद अभिनव है—दिव्य भावों से भरा, वास्तव को स्वीकार करना किन्तु शुद्ध मन-बुद्धि के द्वारा। दरदी देवमानव श्रीरामकृष्ण मानव को देवत्व में उन्नीत करते हैं—शिव भाव से पूजा के द्वारा, निकृष्ट जीव भाव से दया के द्वारा नहीं। यह एक नयी दृष्टि, नया बोध, नूतन अनुभूति, नूतन धर्म है, सभी मनुष्य ही हुए देवता और उनकी सेवा के द्वारा मनुष्य हुआ समस्त बन्धनों से मुक्त, अनन्त आनन्द का अधिकारी। असीम ऐश्वर्यमय, महिमामय साम्राज्य का सम्राट। इसीसे श्रीरामकृष्ण के अवतार से वेदान्त को हम कर्म में परिणत देखते हैं। और इसीसे, जो वेदान्त साधक को उदार नहीं बनाता, जो वेदान्त-ज्ञान मनुष्य के मन और इच्छाशक्ति को दैहिक भोग से ऊपर नहीं ले जाता, मानवमात्र के कल्याण के लिए उन्मुख नहीं करता, उस वेदान्त के प्रति श्रीरामकृष्ण का धिक्कार और भर्त्सना अत्यन्त तीव्र एवं अतुलनीय है। पूर्ण मानवता के विकास का अपूर्व दृष्टान्त हमलोग उनके ही जीवन में पाते हैं—धनी लुहारिन को भिक्षामाता के रूप में ग्रहण के द्वारा, अक्षय को मृत्यु से भींगे गमछे को निचोड़ने की तरह वेदनाहत श्रीरामकृष्ण के द्वारा, स्नेहमयी गर्भधारिणी की बात के स्मरण से इनके वृन्दावन-त्याग के द्वारा, सहधर्मिणी सारदा देवी के लिए आभूषण देने के द्वारा, अपनी पत्नी को यथार्थ शिक्षा देने के द्वारा, फिर केशव सेन के कठिन रोग से पीडित अवस्था में माँ काली के निकट डाभ-चीनी को मनौती मानने के द्वारा, बच्चे की भाँति सरलता और मातृ-निर्भरशीलता के द्वारा, आहत हाथ की व्यथा से अत्यन्त साधारण मनुष्य की भाँति व्यवहार करने के द्वारा, लोक व्यवहार में अनेक प्रकार के हास्य-कौतुक आदि की सृष्टि के द्वारा, नरेन्द्रादि बालकों के कल्याण के प्रयास में सदा जाग्रत उत्कंठा के द्वारा, कलकत्ता-वासियों के तमसाच्छन्न मन-बुद्धि को उज्जीवित

करने के प्रयत्न के द्वारा, रानी रासमणि के शान्त सुन्दर मन्दिर के प्राङ्गण को छोड़कर महानगरी की अली-गली में बार-बार जाने के द्वारा, सबके दरवाजे-दरबाजे जाकर वेदान्त के विग्रह-स्वरूप होकर वन के वेदान्त को पहुँचा देने के द्वारा, गाड़ी में छोड़ दी गयी शराब की बोतल को मदिरा में आसक्त गिरीश के समीप पहुँचा देने तथा नटियों के प्रति विरल शुद्ध मानव-प्रेम के उदाहरण के द्वारा, तीर्थयात्रा से दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा की प्रधानता के द्वारा, कलाई घाट के दुःखी लोगों के दुःख दूर करने की तत्परता के द्वारा, मनुष्य के एकत्व-बोध से भिखाड़ियों की जूठन साफ करने के द्वारा, सेवकों के शौच स्थान को अपने हाथों अपने लम्बे बालों से साफ करने के द्वारा, मथुर बाबू के अनुरोध पर जगदम्बा दासी का रोग अपनी देह पर भोगने के द्वारा, नौका पर मल्लाहों के आपसी कलह से ठाकुर के अपने शरीर पर आघात के अनुभव के द्वारा, श्वेत कुष्ठरोग को दूर करने के प्रयास में ज्वाला पीड़ित होने के द्वारा, गले में भीषण पीड़ा रहने पर भी सर्वदा आर्त एवं जिज्ञासुओं की सेवा के द्वारा एवं सर्वोपरि "लाख गुना कष्ट पाने पर भी यदि इन लोगों का मंगल हो, उद्धार हो तो वह करूँगा" इस उक्ति के द्वारा। सचमुच, ऐसा मानवमित्र, दरदी, हितकारी और कौन हो सकता है?

श्रीरामकृष्ण ने अपने जीवन में यह वास्तविक कर दिखाया कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर की आत्मा का ऐकसत्य एक दूसरे को आत्मीय बनाये हुए है; परमात्मा सुदूर आकाश के कोई अद्भुत विषय नहीं हैं, परमात्मा मनुष्य के परम आत्मीय हैं— मनुष्य और परमात्मा में कोई भी भेद नहीं है, इसीलिए श्रीरामकृष्ण की मानवता एक शब्द में मनुष्य की अन्तर्निहित चिरन्तन चैतन्य शक्ति की स्वीकृति है।

निर्वासनोऽपि सततं परमंगलार्थी
निष्कर्मकोऽपि सततं परकर्मकर्ता।
निर्दुःखलेशमपि तं सततं परेषां
दुःखेषु कातरमहो भज रामकृष्णम्।

●

श्रीरामकृष्ण के तीन रूप

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

रामकृष्ण भावधारा के आदि स्रोत स्वयं श्रीरामकृष्ण हैं। लेकिन इस भावधारा का प्रमुख प्रचार एवं प्रसार स्वामी विवेकानन्द के द्वारा हुआ था। श्रीरामकृष्ण ने स्वामी जी को इस कार्य के लिए विशेष रूप से चुना था। श्रीरामकृष्ण के लीलासंवरण के बाद कुछ दिनों तक स्वामी विवेकानन्द के मन में एक भीषण अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। एक ओर उनकी माता एवं छोटे-छोटे भाई बहन थे जो उनपर ही आश्रित थे। अगर वे संन्यास ले लेते तो उन्हें भूखों मरना होता। दूसरी ओर श्रीरामकृष्ण की अमृतमय वाणी का प्रचार व प्रसार करने से समग्र जगत का वृहत् कल्याण होता। पर इसके लिए संन्यास ग्रहण करना अनिवार्य था। अन्त में स्वामी जी ने दूसरा पथ

ग्रहण किया; संन्यास लिया और भारत भ्रमण पर निकल पड़े।

परिब्राजक अवस्था में भारत दर्शन करने पर उन्होंने अपने नेत्रों से भारत की अज्ञान एवं दारिद्र्य पूर्ण अवस्था देखी। सर्वत्र निराशा, अकर्मण्यता एव तमोगुण का साम्राज्य देखा। घूमते-घूमते वे कन्याकुमारी पहुँचे और बाद में अमेरिका चले गये। अमेरिका में उनके साफल्य से भारत में नवजागरण की एक महान लहर पैदा हुई। लौटने के बाद उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों में, दक्षिण भारत, बंगाल, पंजाब आदि स्थानों में सार्वजनिक सभाओं में भाषण के माध्यम से अपना संदेश प्रदान किया। अपने पत्रों एवं वार्तालापों के माध्यम से भी उन्होंने अपने स्फूर्ति दायक सन्देश को भारत वासियों तक पहुँचाया।

लेकिन जब स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाइयों ने उनके इस संदेश को सुना तो वे दंग रह गये। उन्हें लगा कि यह तो उनके गुरुदेव श्रीरामकृष्ण का संदेश नहीं है, जिसके प्रचार के लिए स्वामी विवेकानन्द अपनी माता एवं भाई बहन को असहाय छोड़कर घर से निकल पड़े थे। इस संन्देश में ईश्वर तो कहीं नहीं है—केवल है: उठो, जागो, गरीबों की सहायता करो, भूखों को अन्न दो, अज्ञानियों को ज्ञान दो, काम में लग जाओ। भारतमाता को ही अपनी आराध्य देवी बनाओ, अन्य देवी देवताओं को भूल जाओ, इत्यादि।

स्वामी विवेकानन्द ने उस समय भारत को जो सन्देश प्रदान किया उसमें तथा श्रीरामकृष्ण, वचनामृत में लिपिबद्ध उनके उपदेशों में एक अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है। श्रीरामकृष्ण बार-बार भक्तों को कहते हैं कि ईश्वर दर्शन ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। धीरे-धीरे कर्म कम करना चाहिए एवं ईश्वर में मन लगाना चाहिए। कर्म-योग बहुत कठिन है, कलिकाल में भक्ति योग सुगम है, इत्यादि। इस प्रकार के उपदेशों को सुनने-सुनाने के अभ्यस्त स्वामी जी के गुरुभाई इससे भिन्न बातें उनके मुँह से सुनकर आश्चर्यचकित हो गये हों, यह स्वभाविक है। फिर भी, उन्होंने स्वामी जी के आदेश को स्वीकार किया और उनके निर्देशानुसार जन-कल्याण के कार्यों में लग गये।

१९०२ ई. में स्वामी विवेकानन्द की महासमाधि हो गयी। तबतक उनका संदेश सारे भारत में आग की तरह फैल चुका था, और उसने भारत के भावी कर्णधारों, देशभक्तों, राजनैतिक एवं सामाजिक नेताओं को अनुप्राणित किया था। स्वामी जी ने आह्वान किया था कि आगामी पचास वर्ष तक जननी जन्म भूमि ही हमारी आराध्य देवी होवे, और आह्वान के पचास वर्षों में ही भारत स्वाधीन हो गया। इस बीच श्रीरामकृष्ण बचनामृत के विभिन्न खण्ड भी धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगे और श्रीरामकृष्ण के उपदेश, यथा ईश्वरदर्शन के लिए व्याकुलता की आवश्यकता, त्याग और वैराग्य, कर्मत्याग आदि भी धीरे धीरे फैलने लगे। और आज श्रीरामकृष्ण की पूजा तथा श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का पाठ घर-घर होने लगा है। कुछ वर्षों पूर्व बंगला भाषा में लिखित श्रीरामकृष्ण-कथामृत के सस्ते संस्करण की दो लाख प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गयी थीं।

स्वामी विवेकानन्द के जन्मदिन को भारत सरकार ने राष्ट्रीय युवादिवस घोषित कर दिया है। इसी के साथ ही साथ सारे भारत में स्वामी विवेकानन्द के विचारों की मानो बाढ़-सी आ गयी है। आज भारत में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो स्वामीजी के विचारों से परिचित अथवा प्रभावित नहीं होगा। स्वामी जी के माध्यम से लोग श्रीरामकृष्ण को जानने लगे हैं।

लेकिन रामकृष्ण-भावधारा के तीसरे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व, माँ सारदा के बारे में आज भी बहुत कम लोगों को जानकारी है और उससे भी कम

लोगों को उनकी विशिष्ट भूमिका का ज्ञान है।

सत्य तो यह है कि माँ सारदा सदा अन्तराल में ही रहीं। जब श्रीरामकृष्ण जीवित थे तब वे नहबत खाने में चुपचाप लोकचक्षु से अगोचर रहा करती थीं। स्वयं श्रीरामकृष्ण उनकी इस लज्जाशीलता की प्रशंसा करते एवं उन्हें इस तरह रहने को प्रोत्साहित करते थे। उन्होंने माँ को एक अमूल्य रत्न की तरह छिपा कर रखा था।

श्रीरामकृष्ण के लीला-संवरण के कई वर्ष बाद तक भी श्री माँ के बारे में बहुत कम लोग जानते थे। श्रीरामकृष्ण के बहुत से भक्त तो उन्हें गुरुपत्नी मात्र मानते थे, एवं उनकी आध्यात्मिक महानता को समझ ही नहीं पाये थे। अन्य भक्त जो उनकी दिव्यता से परिचित थे वे उनके बारे में लोगों के सामने कुछ कहना उचित नहीं समझते थे। संभवतः उनलोगों का दृष्टिकोण यह था कि अगर लोग श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों को ही स्वीकार कर लें तो ही पर्याप्त है। स्वामी विवेकानन्द माँ सारदा को केन्द्र बनाकर संन्यासिनियों के एक मठ की स्थापना करना चाहते थे। लेकिन उनके इस विचार का प्रतिवाद करते हुए स्वामी योगानन्द जी ने जो युक्ति प्रस्तुति की थी वह इस विषय में महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है। उन्होंने कहा कि "श्रीरामकृष्ण को जब समाज के अधिकांश लोग अवतार के रूप में मानने लगे थे, उसके थोड़े समय बाद ही उनका देहावसान हो गया था। इसी तरह यदि माँ सारदा के माहात्म्य का प्रचार हो जायेगा, तो उनका शरीर भी अधिक दिनों तक नहीं रहेगा।" तो यह भी एक कारण हो सकता है माँ सारदा के सम्बंध में जानकारी के अभाव का। वस्तुतः सन् १९५३ में माँ सारदा की जन्म शताब्दि के अवसर पर ही विभिन्न लेखों एवं पुस्तकों के माध्यम से उनकी जीवनी और वाणी पहली बार व्यापक रूप में प्रकट हुई थी।

लेकिन अब तो माँ सारदा अपने आप प्रकट हो रही हैं। जिस प्रकार उनकी जीवद्दशा में असंख्य नरनारी उनके अदृश्य किन्तु दुर्निवार्य आकर्षण से आकृष्ट हो दूर-दूर से उनके पास पहुँचते थे, उसी तरह आधुनिक भौतिक एवं भोगवादी जीवन की ज्वाला से संतप्त हो असंख्य मनुष्य माँ सारदा के संदेश को ग्रहण कर रहे हैं। यह आकर्षण विशेष कर विदेशों में अधिक परिलक्षित हो रहा है। वहाँ के लोग स्वामी विवेकानन्द एवं श्रीरामकृष्ण से अधिक माँ सारदा के उपदेश एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं। सत्य तो यह है कि अब समय आ गया है जब माँ सारदा के स्निग्ध, स्नेहमय, शीतल व्यक्तित्व एवं उनके शान्तिदायक संदेश का प्रसार एवं प्रचार अधिकाधिक होवे।

(२)

रामकृष्ण-सारदा-विवेकानन्द भावधारा एकांगी नहीं, बल्कि विविधता पूर्ण एवं लचीली है। श्रीरामकृष्ण का संदेश देश, काल एवं पात्र के अनुसार अपने को परिवर्तित करने की क्षमता रखता है। या यों कहें कि उसमें इतनी वैविध्यपूर्ण सामग्री है कि वह सभी देश, काल एवं पात्र की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। जिस प्रकार व्यक्ति व्यक्ति में अन्तर होता है, उसी प्रकार समाजों में भी विविधता होती है। यही नहीं, समाज भी काल-क्रम के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। अतः जो वस्तु या विचार एक व्यक्ति और समाज के लिए एक समय में उपयुक्त हो वही दूसरे काल में उसके लिए अनुपयुक्त हो सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण का सन्देश मूलतः एक होते हुए भी विविधतापूर्ण है, जिसका संकेत हमें श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द एवं माँ सारदा के व्यक्तित्व एवं उपदेशों में मिलता है। रामकृष्ण-सारदा-विवेकानन्द के सन्देश की अभिव्यक्ति के क्रम के

उपर्युक्त ऐतिहासिक विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि सर्वप्रथम स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व से भारत एवं विश्व परिचित एवं उनके विचारों एवं सन्देश से अनु प्राणित हुआ था। तदनन्तर श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का प्रसार एवं प्रचार हुआ तथा असंख्य लोगों ने श्रीरामकृष्ण की आराधना प्रारंभ और की उन्हें अपने इष्ट के रूप में स्वीकार किया। इसके बाद ही लोग धीरे धीरे माँ सारदा को पहचानने और उनसे परिचित होने लगे हैं। इस क्रम विकास का एक रहस्य है, महत्व है।

हमने देखा है कि स्वामी विवेकानन्द ने संन्यास धर्म को जिस उद्देश्य से स्वीकारा था, वह था श्रीरामकृष्ण के अमृतमय उपदेशों के प्रसार के द्वारा लोक कल्याण साधना। लेकिन जब वे परिव्राजक के रूप में भारत भ्रमण को निकले तो उन्होंने अनुभव किया कि भारत की प्राथमिक आवश्यकता है शिक्षा एवं अन्न। उन्हें अपने गुरुदेव की बात याद हो आयी कि भूखे-पेट धर्म नहीं होता। स्वामी जी की स्वयं की भी यह मान्यता थी कि भूखे व्यक्ति को रोटी न देकर धर्म का उपदेश देना उसका मजाक उड़ाना, उसका तिरस्कार करना है। अतः स्वामी जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सर्वप्रथम भारत में अन्नदान एवं शिक्षा दान, करना होगा।

एक और कारण था। भारत में सर्वत्र तमोगुण व्याप्त था, और तमोगुण सत्वगुण-सा प्रतीत होता है। यदि तमोगुणी व्यक्ति को श्रीरामकृष्ण के उच्च-आध्यात्मिक उपदेश सुनाये जायें तो वह उन्हें गलत समझकर और अधिक तमोगुण में डूब जायेगा। श्रीरामकृष्ण के उपदेशों को ठीक ठीक समझने एवं ग्रहण करने के लिए सत्वगुणी नहीं तो कम से कम रजोगुणी अधिकारी की आवश्यकता है। हम यह पाते भी हैं कि श्रीरामकृष्ण ने जिन व्यक्तियों को सामान्यतः उपदेश दिये वे या तो कर्मठ गृहस्थ थे या विद्यालयों के तेजस्वी फुर्तीले नौजवान। उनके शिष्यों में प्रमुख मास्टर; वकील, लेखक, विचारक, प्रचारक, अफसर आदि थे। घोर तमोगुणी या विषयी लोगों को श्रीरामकृष्ण सामान्यतः उपदेश देते ही नहीं थे। किसी न किसी बहाने उनसे दूर रहते थे। इस वर्ग के व्यक्तियों को श्रीरामकृष्ण कर्म प्रवृत्ति कम करने एवं भगवान में मन लगाने का उपदेश देते थे। एक डिप्टी मजिस्ट्रेट भक्त ने श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना की कि जिससे वह उच्चतर पद पा सके। श्रीरामकृष्ण ने उसका तिरस्कार करके अपने वर्तमाम पद से ही संतोष करने का उपदेश दिया। अन्य एक धनाढ्य भक्त ने स्कूल व अस्पताल खुलवाने की याचना की। श्रीरामकृष्ण ने उसे निरुत्साहित करते हुए कहा कि यदि भगवान सामने आ जावें तो उनसे स्कूल, अस्पताल मांगोगे या ज्ञान भक्ति ?

अतः श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकान्द के उपदेशों में विरोधाभास का कारण ढूंढ़ने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वामीजी के उपदेश तमोगुणी, दरिद्र, अज्ञानी भारतवासियों को जाग्रत करने के लिए, हैं और श्रीरामकृष्ण के उपदेश रजोगुण प्रधान, कर्मठ व्यक्तियों के लिए हैं। तमोगुण को दूर किए बिना, रजोगुण की प्रवृत्ति के स्तर पर उठे बिना सत्वगुण का निवृत्तिपरक जीवन संभव ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि स्वामीजी का कार्य श्रीरामकृष्ण के उपदेशों के लिए जीमन तैयार करने का, क्षेत्र प्रस्तुत करने का था। यही कारण है कि ऐतिहासिक दृष्टि से श्रीरामकृष्ण के संदेश की अभिव्यक्ति एवं प्रसार स्वामी जी के सन्देश के प्रसार के बाद हुआ।

और मां सारदा का संदेश ? मां के जीवन में न तो तमोगुण की निष्क्रियता है, न रजोगुण का चांचल्य। माँ अथक कर्मरत होते हुए भी पूर्णरूप से शान्त, गंभीर, बाह्य प्रकाश से सर्वथा रहित हैं। मानो सत्वगुण में प्रतिष्ठित देवी। उनका सन्देश भी

स्वामी जी एवं श्रीरामकृष्ण के सन्देशों से भिन्न है। एक शब्द में, वह है प्रेम। माँ कहती हैं 'किसी के दोष न देखो। दोष देखो अपने। कोई पराया नहीं है। सभी अपने हैं, सभी को अपना बनाना सीखो' यह अपना बनाना, प्रेम के द्वारा ही संभव है, जो स्वयं माँ सारदा ने सारे जीवन किया, करके दूसरों को सिखाया। प्रेम वस्तुतः वही कर सकता है, जो पूर्ण हो, निःस्वार्थ हो, जो अपनी क्षुद्र अहंता, ममता से ऊपर उठ चुका हो। उसी के लिए संभव है जो सत्वगुण में प्रतिष्ठित हो चुका हो, जिसमें भौतिक समृद्धि की कामना तो नहीं ही हो, बल्कि जो मुक्ति की इच्छा के भी ऊपर उठने में समर्थ हो।

माँ सारदा के संदेश का दूसरा पक्ष उन त्रसित, पीड़ित, संसार ज्वाला से दग्ध लोगों के लिए है, जिन्हें संसार में कहीं आश्रय नहीं मिलता, कहीं सहारा नहीं दिखता। जो लोग न तो स्वामी जी के आह्वान को सुनकर उठ पाते हैं, और अगर उठते भी हैं तो व्यक्तिगत दुर्बलताओं एवं असमर्थताओं के कारण अथवा समाज की क्रूरता के कारण रोजी रोटी कमाने में असमर्थ हो जीवन संघर्ष में पराजित हो गये हैं। ऐसे लोगों के लिए माँ हाथ पसारे खड़ी हैं। आँचल से उनके आँसू पोंछने, उन्हें सहारा देने, खड़ी हैं। वे कह रही हैं, "कहाँ हो मेरे बच्चो, आओ; आओ और मेरी गोद में शान्ति से सोओ।" "सदा याद रखो कि तुम्हारी एक माँ है।" माँ चाहती हैं कि सभी सन्तानें उनकी यह वाणी याद रखें।

फिर ऐसे भी लोग हैं, जो रजोगुणी हैं पर उस रजोगुण के परिणाम स्वरूप अत्यधिक चंचल हो गये हैं। भौतिक दृष्टि से समृद्ध है, लेकिन भौतिकता ने ही उन्हें तप्त कर दिया है। आधुनिक भोगवाद एवं भाग-दौड़ व व्यग्रता के जीवन ने उन्हें अशान्त कर डाला है। सब कुछ होते हुए भी वे अकेले हैं, अपने को आश्रय हीन पाते हैं, समाज के अंग नहीं बन पाते। ऐसे लोगों के लिए भी माँ अपना शान्ति-वारि सिंचन कर रही हैं। विज्ञान, टेक्नालाजी एवं उसके परिणाम स्वरूप प्राप्त भौतिक सुविधाओं ने मानव को सुखी नहीं, दुखी ही किया है, शान्त नहीं, अशान्त ही किया है। यही कारण है कि भौतिक दृष्टि से सम्पन्न विदेशों में माँ सारदा के प्रति इतना अधिक आकर्षण देखा जाता रहा है।

माँ का सन्देश उन दुर्बल साधकों के लिए भी है जो श्रीरामकृष्ण के उपदेशानुसार चाहते हुए भी भगवद्दर्शन के लिए सर्वस्व का त्याग करने में असमर्थ हैं। ऐसे लोगों को माँ अभय देते हुए कहती हैं कि तुमसे जितना ध्यान-जप हो करो, बाकी मैं करूँगी। आखिर तुम कितना कर सकोगे? इत्यादि।

(३)

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया होगा कि श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द एवं माँ सारदा के सन्देश एक ही सन्देश के तीन पक्ष हैं, तथा एक दूसरे के परिपूरक हैं। इन तीनों में से किसी एक के भी अभाव में यह सन्देश सार्वजनीन, सार्वलौकिक एवं सार्वकालिक न होकर एकांगी बना रह जाता।

यहाँ एक बात समझ लेना आवश्यक है। ऐसा नहीं है कि स्वामी विवेकानन्द के सन्देश में भगवद्दर्शन अथवा सर्वस्व त्याग की बात न हो, या श्रीरामकृष्ण ने लोक कल्याण अथवा जन-जागरण की बात की ही न हो। अन्तर केवल इतना है कि स्वामी जी ने भारत की तात्कालिक परिस्थितियों के अनुरूप जन-जागरण शिक्षा, एवं भौतिक उन्नति आदि पर बल दिया था। लेकिन विदेशों में उन्होंने विशुद्ध रूप से वेदान्त का, मुक्ति का सन्देश ही

दिया, क्योंकि वहाँ पर जन जागरण, सेवा आदि की कोई आवश्यकता नहीं थी। वहाँ के लोग आध्यात्मिक दृष्टि से भूखे थे, अतः उन्हें वेदान्त का सन्देश स्वामीजी ने दिया। यह भी स्मरणीय है कि स्वामीजी भारत में सामाजिक अथवा राजनैतिक विचारों के प्रचार के पूर्व धार्मिक विचारों का प्लावन चाहते थे। भारत की भौतिक उन्नित भी वे धर्म के माध्यम से चाहते थे। वस्तुतः रामकृष्ण-सारदा-विवेकानन्द का सन्देश एक ही है—अन्तर केवल उसके पहलू विशेष पर अधिक बल देने से होता है।

जब हम यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति या समाज के लिए स्वामीजी के सन्देश की तथा अमुक के लिए श्रीरामकृष्ण के सन्देश की आवश्यकता है तब हम यह मानो मानकर चलते हैं कि व्यक्ति और समाज स्थिर, गतिहीन इकाइयाँ हैं। लेकिन वस्तुतः ये गतिशील, एवं परिवर्तनशील होते हैं। व्यक्ति सदा एक-सा नहीं होता। वह बढ़ता है, सीखता है, उन्नति करता है, विकसित, परिपक्व एवं प्रौढ़ होता है। उसी तरह समाज भी बदलता है। जो व्यक्ति कभी दुर्बल, तेजहीन, आलसी था, वह प्रेरणा एवं प्रयास से बलवान, तेजस्वी एवं कर्मठ बन सकता है। वही पूर्णता प्राप्तकर उदार, प्रेमी, त्यागी एवं सेवक बन सकता है। इसीतरह एक पिछड़ा सामाजिक वर्ग उठ खड़ा हो सकता है। प्रगतिशील हो आदर्श समाज में परिणत हो सकता है। रामकृष्ण-सारद-विवेकानन्द सन्देश के सन्दर्भ में इसका अर्थ यह है कि जिस व्यक्ति अथवा समाज को प्रारम्भ में स्वामी विवेकानन्द के नव-जागरणकारी आह्वान की आवश्यकता नहीं हो, उसे ही समृद्ध एवं सम्पन्न होने पर श्रीरामकृष्ण के त्याग एवं भगवद्दर्शन के सन्देश की आवश्यकता पड़ सकती है। और अधिक प्रगति करने पर वही व्यक्ति माँ सारदा के सन्देश के अनुसार अपने हृदय को प्रसारित कर सभी को अपना बनाने का प्रयत्न करने लगेगा।

स्वामी जी के सन्देश के लगभग नब्बे वर्ष बीत चले हैं। भारत की स्वाधीनता, विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति, शिक्षा के प्रसार एवं प्रचार के बावजूद आज भी अनेक पिछड़े वर्गों को स्वामी जी के सन्देश की आवश्यकता है। लेकिन जीवन के भौतिक एवं आध्यात्मिक पक्षों में सन्तुलन बनाये रखने के लिए अब धीरे-धीरे श्रीरामकृष्ण के त्याग और वैराग्य, साधना और भगवत् दर्शन, निवृत्ति और भक्ति के सन्देश की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस हो रही है तथा होने लगेगी। और अब वह समय भी आ रहा है, जब सारदा की प्रतिष्ठा प्रत्येक घर में, प्रत्येक हृदय में हो, अन्यथा प्रगति व प्रवृत्ति, निवृत्ति और त्याग, दोनों ही जीवन में अशान्ति एवं असन्तुलन ही पैदा करेंगे।

□

रामकृष्ण–विवेकानन्द-भावधारा का वैशिष्ट्य

पं० रामकिंकर उपाध्याय

पण्डितजी के २ महत्वपूर्ण प्रवचनों का संकलन। कीमत १)

डाकखर्च अलग।

विवेक ज्योति कार्यालय, विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर (म० प्र०)

रामभक्ति और रामकृष्ण

—श्री अनन्त प्रसाद शर्मा

दक्षिणेश्वर के संत श्री रामकृष्ण परमहंस शक्ति के अनन्य उपासक के रूप में तो लोक-विश्रुत हैं ही, पर यह भी तथ्य है कि उन्हें रामभक्ति पैतृक उत्तराधिकार के रूप में मिली थी। उनकी वंश-परम्परा रामोपासकों की रही थी। उनके पितामह श्री मानिक राम चट्टोपाध्याय और पिता श्री खुदीराम रामभक्ति में इतने पगे हुए थे कि अपने उपास्यदेव श्री रघुवीर के पूजन-अर्चन के पश्चात् ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। कामारपुकुर उनका पैतृक ग्राम नहीं था, बल्कि उनके पिता अपने गांव के जमींदार के अत्याचार से पीड़ित होकर घर-द्वार छोड़कर वहां चले आये थे। धैर्य और धर्म की भांति भक्ति की भी कसौटी विपत्ति ही है। उपर्युक्त पारिवारिक विपत्ति में भी उन्होंने अपने इष्टदेव के अनुग्रह की प्रतिच्छाया देखी, फलतः अपनी निष्ठा से वे विचलित नहीं हुए। उसी समय एक ऐसी अलौकिक घटना हुई, जिसके फलस्वरूप अपने इष्टदेव में उनकी निष्ठा और भी परिपुष्ट हुई। वे किसी कार्यवश बाहर से अपने गांव की ओर श्रांत-क्लांत अवस्था में लौट रहे थे, तो मार्ग में कुछ क्षणों के लिए विश्राम करने लगे। स्वप्नावस्था में उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके उपास्य भगवान श्री रामचन्द्र बालक का रूप धारण कर उनसे कह रहे हैं कि वे उक्त स्थल पर चिरकाल से प्रतीक्षारत हैं, अतः पथिक उन्हें अपने घर ले चले। श्री खुदीराम ने स्वप्न में ही संकोच-पूर्वक भगवान से निवेदन किया कि उनका अपना घर-द्वार सब छूट गया है, तो सेवा में वे क्यों कर समर्थ हो सकेंगे। तब भक्त का प्रबोधन करते हुए बालक रूपी भगवान ने कहा कि सेवा में होने वाली त्रुटि का ध्यान नहीं रखा जायेगा। इतने में ही स्वप्नजाल छिन्न-भिन्न हो गया और उनका ध्यान उक्त स्थल की ओर गया, तो आश्चर्यपूर्वक उन्होंने देखा कि वहीं एक शालिग्राम शिला है, जिन पर एक व्याल छत्र ताने खड़ा है। कौतूहल संवरण नहीं हुआ। वे उक्त स्थल के और निकट गये तो फणिधर अन्तर्धान हो गया और विवर-मुख पर भगवान शालिग्राम विराजमान थे। भक्त ने "जय रघुवीर" का घोष करते हुए उन्हें शिरोधार्य कर लिया। पारिवारिक समस्याओं से संघर्षरत भक्त को उपर्युक्त विचित्र घटना से पुष्कल संबल प्राप्त हुआ और भक्ति का आवेग इतना बढ़ा कि अपने दिनानुदिन के कार्यों का शुभारम्भ भी वे "जय रघुवीर" के मंत्रोच्चार से ही करने लगे और कालांतर में जब उनकी जीवनलीला समाप्त हुई तो "जय रघुवीर" ही उनके मुख से निकले अंतिम शब्द थे।

उपर्युक्त धर्म-निष्ठ पिता के पुत्र होकर श्री रामकृष्ण परमहंस जब कामारपुकुर में अवतरित हुए तो स्वभावतः कुल के इष्ट श्री रघुवीर के चरणों में उनकी श्रद्धारूपी वल्लरी दिनानुदिन पल्लवित और पुष्पित होती गयी। बाद में दक्षिणेश्वर आने पर अपने साधु स्वभाव के अनुरूप उन्हें अर्चक का कार्य सौंपा गया और जगन्माता के प्रति जो श्रद्धा-सुमन उन्होंने अर्पित किये वह भक्ति के इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित होने योग्य

है, किन्तु उनकी भक्ति का बीज उपर्युक्त वंशानुगत रामभक्ति में है और यह श्रीरामकृष्ण की विशेषता है कि उन्होंने एक साथ ही अनेक इष्ट देवों की भक्ति की गंगा में अवगाहन किया था। दास्य भाव की भक्ति की परिपूर्णता की दृष्टि से महावीर हनुमान का स्वरूप-चिंतन कर वे आत्मविभोर हो उठे थे। यहां तक कि कुछ काल तक चाल-ढाल, भोजन, उपवेशन आदि दैनन्दिन मामलों में भी वे "वानरानामधीशम्" का अनुकरण करने लगे थे और वृक्षों की डालों पर विचरण करते हुए "रघुवीर-रघुवीर" रटते थे। इसी अवधि में एक अद्भुत घटना हुई। एक दिन वे पंचवटी की सुखद छाया में बैठे थे (जाग्रत अवस्था में) कि उनके समक्ष एक अतुलित प्रकाश-पुंज महिला-मूर्ति—"छवि गृह दीप शिखा जनु बरई"—दीख पड़ी। वे आश्चर्यचकित हो सोचने लगे कि यह कौन है। तभी न जाने कहां से आकर एक वानर अकस्मात उक्त महिला के श्री चरणों में दंडवत् लोट गया। तब श्री रामकृष्ण को यह भान हुआ कि यह मूर्ति विदेहतनया सीता हैं और माता सीता कहकर ज्योंही उन्होंने प्रणिपात हेतु उनके चरणों में झुकना चाहा, त्योंही वह ज्योति-स्वरूपा क्षिप्र गति से आकर उनके शरीर में समाहित हो गयी। श्री रामकृष्ण की मान्यता है कि यह उनके जीवन की प्रथम अलौकिक घटना है।

रामभक्ति संप्रदाय के एक साधु "जटाधारी" का उल्लेख श्री रामकृष्ण अपने शिष्य समुदाय के समक्ष बारबार करते रहते थे। उक्त साधु श्री रामलला के अनन्य उपासक थे—'बालक रूप राम कर ध्याना'। उन्होंने श्री रामकृष्ण को श्री राम-मंत्र की दीक्षा दी थी। पूर्व काल में श्री रामकृष्ण अपने कुल इष्ट श्री रघुवीर की उपासना दास्य भाव से करते थे, किन्तु साधु "जटाधारी" के संपर्क के फलस्वरूप उनकी भक्ति में वात्सल्य भाव का परिपाक हो गया। बालक राम (रामलला) के प्रति उनका मातृवत स्नेह उमड़ पड़ा। वे इस रूप की छटा में इतने मग्न हो जाते थे कि समय का उन्हें ध्यान नहीं रहता था। उन्हें प्रतीत होता था कि एक अलौकिक ज्योति-पुंज के रूप में बालक राम उनके सतत संगी बन हुए हैं। एक बार श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर से एक अन्य गांव की यात्रा पालकी पर कर रहे थे, तो उन्हें लगा कि दो किशोरवय के बालक उनके शरीर से निकले और उनकी पालकी के आगे-पीछे चलते हुए बाल-लीलाएँ करने लगे और फिर उनके ही शरीर में समा गये। साधु जटाधारी ने जो "सब संत सुखी विचरंति मही" की पंक्ति के संत थे, दक्षिणेश्वर से विदा लेते समय श्री रामलला की इष्ट मूर्ति श्री रामकृष्ण को दे दी, क्योंकि उन्हें इसकी प्रेरणा स्वयं भगवान ने दी, ऐसा उन्हें प्रतीत हुआ। श्री रामकृष्ण अपने व्यक्तित्व में श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों का मणिकांचन संयोग मानते थे और कहा करते थे कि जो त्रेता में श्रीराम बने और द्वापर में श्रीकृष्ण बने, वही इस देह में आये हैं, पर इस बार उनका आगमन वैसा ही है, जैसा किसी राजा का छद्मवेश धारण करना। श्री रामकृष्ण को भक्तजन अवतारी पुरुष मानते हैं, यह सर्वविदित है।

इष्ट से संबंध रखने वाली साधारण से साधारण वस्तु भी भक्त के लिए अतिशय महत्वपूर्ण हो जाती है।

इस भाव को स्पष्ट करने हेतु श्री रामकृष्ण ने एक उपाख्यान कहा था, जिसका आशय यह है कि भगवान श्रीरामचन्द्र के लीला संवरण के पश्चात (अमर होने के कारण) विभीषण लंका में राज्य करते रहे। एक दिन उन्हें सूचना मिली कि लंका के तट पर लहरों ने एक मनुष्य को बहाकर लाया है। अनेक राक्षसों के मुंह में पानी भर आया, यह सोचकरकि उन्हें स्वादिष्ट मनुष्यकामांस भक्षण करने

को मिलेगा, किन्तु विभीषण के हृदय में भक्ति का सिंधु उमड़ पड़ा, मात्र इस कल्पना से कि यह वही मानव स्वरूप है, जिसमें श्रीरामचन्द्र ने लंका के तट पर पधारकर चराचर को कृतार्थ किया था। मानव के रूप में आराध्य के स्वरूप के पुन: दर्शन का सौभाग्य हुआ, ऐसा सोचकर विभीषण ने उस व्यक्ति का हार्दिक स्वागत-सत्कार किया और उपहारों से लादकर स्वदेश लौटा दिया। विभीषण की शरणगति का भाव "सकृत् देव प्रपन्नाय" भक्तों के मानस की वह भाव-भूमि है, जिसमें साधारण वस्तु भी भक्ति के रंग में रंगी हुई और भक्ति को उद्दीप्त करने वाली जान पड़ती है। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि यदि हम ईश्वर की ओर एक कदम आगे बढ़ाते हैं तो वे हमारी ओर दस कदम आ जाते हैं।

भक्ति सिद्धांतों में द्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत तीनों ही श्री रामकृष्ण को स्वीकार्य थे। वे कहा करते थे कि उपर्युक्त तीनों सिद्धांत मानव मन की प्रगति के विभिन्न सोपानों से संबंधित हैं। वह कभी एक को स्वीकार करता है तो अन्य दो का बहिष्कार, किन्तु क्रम-क्रम से तीनों स्थितियों से गुजरता है। साधकों के प्रति श्रीरामकृष्ण का उद्‌बोधन था—"आगे बढ़ो, एक-एक कदम आगे बढ़ाओ, शुरू से ही प्रारम्भ करो। चंदन वन से चांदी की खदान तक जाओ, वहां से सोने की खदान तक और सोने की खदान से हीरे की खदान तक।" साधना का प्रथम सोपान प्रतिमा पूजन है, जिसका अर्थ है—एक रूप या प्रतीक की सहायता से उपासना करना। इसके बाद नामजप, महिमा-गान और चिंतन का स्थान आता है। तत्पश्चात ध्यान उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति करा देता है। इस प्रसंग में श्रीरामकृष्ण एक उपाख्यान सुनाया करते थे, संभवत: जिसका आधार यह संस्कृत श्लोक है—"देह बुद्ध्या तु दासोऽहम, जीव बुद्ध्या त्वदंशक:। आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहं, इति सिद्धान्त निश्चित:॥" एक बार श्रीराम ने हनुमान से पूछा कि तुम मुझे किस दृष्टि में देखते हो? हनुमान ने उत्तर दिया—"जब मैं अपने प्रति देह-बुद्धि रखता हूँ, तो आपको स्वामी समझता हूँ और और अपने को आपका सेवक। जब मैं अपने को जीव समझता हूँ, तो आपको पूर्ण और अपने को आपका एक अंश मानता हूँ; किन्तु जब मैं सारी सीमाओं से ऊपर उठकर अपने को आत्मा समझता हूँ, तो आप में और अपने में कोई अन्तर नहीं देख पाता।" श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि व्यक्ति प्रथमत: शरीर को ही सब कुछ मानता है—"सबके देह परम प्रिय स्वामी"—अत: अपनी लघुता एवं ईश्वर की महार्घता को दृष्टि-पथ में लाकर भगवान की किसी रूप से साधना आरम्भ करें। दूसरा सोपान है, भजनानंद प्राप्त करना, जो भजन, चिन्तन, जप, सेवा आदि से संभव है। सेवा, जप और भगवान के आनन्दमय रूप के ध्यान से जो आह्लाद प्राप्त होता है, उसे हम अन्य साधकों के साथ मिलकर बाँट सकते हैं। दूसरों की सेवा करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि हम पहले से ही पूर्ण प्रबुद्ध हों। तीसरा सोपान है, ब्रह्मानन्द को प्राप्त करना, जो परमात्मा के साक्षात्कार से संभव है और यह आध्यात्मिक दृष्टि से प्रबुद्ध होने की स्थिति है, जिसे अंतिम सोपान माना जाता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि कल्पना करो कि किसी सेवक की दीर्घकालीन सेवा से प्रसन्न होकर स्वामी उसके प्रति अत्यंत सदय एवं अनुकूल हो उठते हैं तथा एक दिन उसका हाथ पकड़कर अपने आसन पर उसे बिठाने लगते हैं। सेवक असमंजस में पड़ जाता है, फिर भी स्वामी उसे आग्रहपूर्वक खींचकर अपने पास बैठाकर कहते हैं कि हम दोनों एक हैं, अर्थात् अद्वैत भाव स्थापित हो गया। यह है श्री रामकृष्ण का भक्ति-दर्शन और साधना-समन्वय का पारस-स्पर्श, जो मिट्टी को सोना बना सकता था। ●

स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में

—रोमाँ रोलाँ

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

रवीन्द्रनाथ ठाकुर :

कुछ ही वर्षों पूर्व बंगाल में जिन महात्मा विवेकानन्द का देहावसान हुआ है, उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य को अपने दाहिने व बायें रखकर अपने आपको बीच में प्रतिष्ठित किया था। भारतवर्ष के इतिहास से पश्चिमी अवदान को नकारकर भारत को चिरकाल के लिए संकोर्ण प्रथाओं में आबद्ध रखना उनके जीवन का उद्देश्य कभी नहीं था। वस्तुत: उनकी प्रतिभा ग्रहण करने, समन्वय करने और सृजन करने में थी। उन्होंने उस संचार व्यवस्था को प्रारम्भ करने में अपना जीवन न्योछावर कर दिया था, जिसके माध्यम से भारत की उपलब्धियाँ पश्चिम में और पाश्चात्य उपलब्धियाँ भारत में स्वीकृत हो सकें।

यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए; उनमें सब कुछ विधेयात्मक है, निषेधात्मक कुछ भी नहीं।···· आधुनिक भारत में एकमात्र विवेकानन्द ने ही एक ऐसे महान् संदेश का प्रचार किया जो कि किन्हीं विधि-निषेधों में ही आबद्ध नहीं है। सम्पूर्ण राष्ट्र को आह्वान करते हुए उन्होंने कहा था, 'तुम सबके भीतर ब्रह्म की शक्ति विद्यमान है—दरिद्रों में विराजमान ईश्वर तुम्हारी सेवा माँगते हैं।, इस संन्देश ने नवयुवकों के चित्त को पूर्ण रूप से जाग्रत कर दिया है। इसीलिए यह सन्देश देशभक्तों के विभिन्न रूपों में तथा विविध प्रकार के त्यागों में फलप्रसू हुआ है। उनके सन्देश ने मानव को श्रद्धा एवं सम्मान के साथ ही शक्ति एवं उत्साह भी प्रदान किया है।

सुभाषचन्द्र बोस :

जब विवेकानन्द ने मेरे जीवन में प्रवेश किया, उस समय मेरी आयु मुश्किल से पन्द्रह वर्ष थी।···· मेरे एक सम्बन्धी हमारे नगर में आकर, हमारे बगल के मकान में निवास कर रहे थे। मैं उनके घर गया था। उनकी पुस्तकों के बीच मेरी निगाह स्वामी विवेकानन्द के साहित्य पर पड़ी। मैंने उस ग्रन्थ के अभी कुछ ही पृष्ठ पलटे थे कि मुझे बोध होने लगा—यही तो वह चीज है, जिसे मैं व्याकुलतापूर्वक ढूँढ़ रहा था। मैं उनसे माँगकर वे पुस्तकें घर ले आया और पढ़ने में जुट गया। उनका सन्देश मेरे अन्त:स्थल की गहराइयों में प्रवेश करता गया।····दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह और महीने पर महीना मैं उन पुस्तकों का पठन करता रहा। सर्वाधिक प्रेरणा मुझे उनकी पत्रावली और भारतीय व्याख्यानों से मिली। कोलम्बो से अल्मोड़ा तक प्रदत्त इन व्याख्यानों में देशावासियों के प्रति उनके व्यावहारिक उपदेश थे। इस अध्ययन के द्वारा मुझे उनके विचरों का सार ग्रहण करने में सफलता मिली।····इसके परिणास्वरूप मेरे भीतर एक उथल-पुथल सी मच गयी, एक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि स्वामीजी को समझने में मुझे काफी समय लगा, पर उनकी कुछ बातें मेरे मन पर प्रारम्भ से ही अमिट छाप छोड़ गयीं। अपने चित्रों और ग्रन्थों के माध्यम से

विवेकानन्द मुझे एक पूर्ण विकसित व्यक्तित्व प्रतीत हुए। मुझे उनकी कृतियों में ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर मिले, जो उन दिनों मेरे मन में उमड़ रहे रहे थे।.. ...

× × ×

स्वामीजी के बारे में कुछ लिखते समय मैं आनन्दविभोर हुए विना नहीं रह पाता। जिन लोगों को उनके साथ घनिष्ठता पूर्वक मिलने-जुलने का सौभाग्य हुआ था, उनमें भी शायद ही कोई कोई उन्हें यथार्थ रूप से समझ सके और उनकी गम्भीरता की थाह पा सके। उनका व्यक्तित्व समृद्ध, गहन व बहुमुखी था, जो उनके उपदेशों तथा लेखों से भी विलक्षण था और उनके इसी व्यक्तित्व ने उनके स्वदेशवासियों पर अद्‌भुत् प्रभाव विस्तार किया था।.....वे अपने त्याग में असंयनित, कर्म में अथक, प्रेम में असीम, विद्या में बहुमुखी, बुद्धि में गहन, भावुकता में अतिरेकी और संघर्ष में निर्मम थे, पर इसके साथ ही वे एक शिशु के समान सरल थे। हमारे इस जगत् में उनके समान व्यक्तित्व दुर्लभ हैं।.......

अपने दीन-दुःखी स्वदेशवासियों के प्रति उनका प्रेम सागर के समान अथाह था। आपको उनका वह सन्देश स्मरण ही होगा, 'कहो बन्धुओ! नग्न भारतवासी, अपढ़ भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी मेरे भाई हैं।.... जोर से पुकार कर कहो कि भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है; और रात-दिन कहते रहो—हे गौरीनाथ! हे जगदम्बे! मेरी दुर्बलता और कापुरुषता को दूर कर दो। माँ, मुझे मनुष्य बना दो।'

स्वामीजी पूर्ण विकसित पौरुष से सम्पन्न थे, उनके रग-रग में योद्धापन भरा था। इसीलिए वे शक्ति के उपासक थे और इसी कारण उन्होंने अपने देशवासियों का उत्थान करने के लिए वेदान्त की एक नवीन व्यावहारिक व्याख्या दी। वे सदैव कहा करते थे, 'शक्ति, केवल शक्ति ही उपनिषदों का सन्देश है।' उन्होंने चरित्रनिर्माण पर सर्वाधिक बल दिया था।

वे इतने महान्, गहन और बहुमुखी थे कि मैं घण्टों लिखकर भी इन महापुरुष की महिमा के प्रति तनिक भी न्याय नहीं कर सकूँगा। वे विश्व के प्रथम ऐसे सर्वोच्च कोटि के योगी थे, जिन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार करने के बाद भी स्वदेश एवं मानवता के नैतिक व आध्यात्मिक उत्थान के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया था। आज यदि वे जीवित होते तो मैं उनके चरणों में होता।

हम लोग जब छात्र थे, तो उस काल के छात्र-समुदाय में 'रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य' का खूब प्रचार था। आजकल लगता है युवा समाज में उस साहित्य का वैसा प्रचार नहीं रह गया है। बल्कि उसकी जगह शायद हल्के-फुल्के और और यदा-कदा अश्लीलतापूर्ण साहित्य का भी खूब प्रचार होता है। क्या यह बात सत्य है? यदि ऐसा ही हो तो यह अत्यन्त खेद की बात है, क्योंकि मानव समाज जैसे साहित्य से पुष्ट होता है, वैसी ही उसकी मनोवृत्ति भी गठित हो जाती है। चरित्रनिर्माण की दृष्टि से 'रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य' की अपेक्षा उत्कृष्ट साहित्य की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के प्रति मैं कितना ऋणी हूँ यह शब्दों के माध्यम से मैं नहीं व्यक्त कर पाता। उन्हीं के पुण्य प्रभाव से मेरे जीवन में चेतना का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ था। निवेदिता के समान ही मेरा भी विश्वास है कि रामकृष्ण और विवेकानन्द एक ही अखण्ड व्यक्तित्व के दो पहलू हैं। आज यदि स्वामीजी जीवित होते तो निश्चय ही वे मेरे गुरु होते अर्थात् मैंने अवश्य ही उनका गुरु रूप में वरण कर लिया होता। अस्तु, कहना न होगा कि जब तक जीवित रहूँगा, 'रामकृष्ण-विवेकानन्द' का अनन्य अनुगत और अनुरागी बना रहूँगा। ★

सोवियत रूस के विवेकानन्द-अनुरागी : एक साक्षात्कार

—स्वामी पूर्णात्मानन्द
संयुक्त सम्पादक, उद्बोधन
कलकत्ता

[स्वामी पूर्णात्मानन्द जी महाराज द्वारा लिया गया यह साक्षात्कार उद्बोधन के ८६ वें वर्ष की ६ वीं संख्या में प्रकाशित हुआ था जिसका यहाँ हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया गया है। अनुवादिका हैं इलाहाबाद विश्वविद्याल के हिन्दी विभाग की विदुषी प्राध्यापिका डॉ० शैल पाण्डेय—सं०]

१९८३ ई० के नवंबर महीने में कलकत्ता आये थे अध्यापक डा० ई० पी० चेलिशेव। अध्यापक चेलिशेव सोवियत रूस के एक अग्रगण्य भारत-तत्वविद् हैं। कुछ समय तक वे मास्को इंस्टीच्यूट ऑफ एशियन स्टडीज के अध्यक्ष थे। समसामयिक भारतीय, विशेषत: हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में वे एक ख्यातिलब्ध विशेषज्ञ हैं। बहुत वर्षों तक उन्होंने मास्को विश्वविद्यालय के इंस्टीच्यूट ऑफ इंटरनेशनल रिलेशन्स में भारतीय भाषा एव साहित्य विभाग के प्रधान का पद अलंकृत किया है। सम्प्रति वे सोवियत रूस के साइंस अकादमी के एसोशियेट सदस्य, सोवियत राइटर्स यूनियन के सदस्य, सोवियत शांति समिति के सदस्य एवं सोवियत भारत मैत्री-परिषद के सह-सभापित हैं। अध्यापक चेलिशेव जवाहरलाल नेहरू शांति पुरस्कार से भी सम्मानित हैं। सारांश यह है कि अध्यापक चेलिशेव आज सोवियत रूस के साहित्यिक और सांस्कृतिक जगत में एक प्रमुख व्यक्ति हैं। भारतवर्ष से उनके प्रेम का एक विशेष प्रिय क्षेत्र है—स्वामी विवेकानन्द। स्वामी जी की जन्म शताब्दी के वर्ष कलकत्ता से प्रकाशित 'स्वामी विवेकानन्द सेंटीनरी मेमोरियल वॉल्यूम' में स्वामी-जी के संबंध में अध्यापक चेलिशेव का एक असाधारण विश्लेषणात्मक प्रबन्ध है। गत तीस वर्षों से सोवियत रूस में विवेकानन्द अनुशीलन एवं विवेकानन्द गवेषणा के प्रसार के कार्य से वे जुड़े हुए हैं। सुना था कि आजकल वे रामकृष्ण-विवेकानन्द के विषय में व्यापक तथ्यानुसंधान के लिए भारत आये हुए हैं।

कलकत्ते के रामकृष्ण मिशन इन्स्टीच्यूट ऑफ कलचर के अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-भवन में उनसे जिस दिन साक्षात्कार हुआ वह नवम्बर का अंतिम दिन था। अवश्य ही यह उनके साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार नहीं था, तो भी स्वामी जी के बारे में विवेचन करने के लिए यह मैं पहली बार उनके पास गया था।

प्रात:काल नौ बजे। कमरे में अकेले ही बैठे थे वे। वे हाथ में एक पुस्तक लिये पढ़ रहे थे। सदा प्रसन्न मुख व्यक्ति मुझे देखते ही उल्लसित हो उठे। स्वभावसिद्ध भंगिमा से हिन्दी में बोले : 'आइए, आइए। नमस्कार।' इसके पूर्व ही देखा है कि अध्यापक चेलिशेव शुद्ध हिन्दी में धाराप्रवाह वार्ता कर सकते हैं। मैंने कहा : क्या पढ़ रहे

थे ? साथ की पुस्तक को बगल में रखकर बोले : "वर्क ऐण्ड इट्स सिक्रेट" यह विवेकानन्द के कंप्लीट वर्क्स का द्वितीय खंड है। विवेकानन्द साहित्य मुझे बहुत प्रिय है। बहुत अच्छा लगता है पढ़ना। क्या आप मेरे लिए विवेकानन्द की एक छोटी सी मूर्ति की व्यवस्था कर सकते हैं ? सुना है कलकत्ते में इस तरह की मूर्ति मिलती है। मास्को में अपने घर में मेज पर उस मूर्ति को रखूंगा।" मैंने कहा : व्यवस्था करने की चेष्टा करूंगा। इसके बाद बोला : अध्यापक चेलिशेव, आप कह रहे थे कि विवेकानन्द साहित्य आपको बहुत अच्छा लगता है। क्यों अच्छा लगता है, क्या यह पूछ सकता हूँ ? डा० चेलिशेव का साथ-साथ उत्तर : 'जरूर, जरूर पूछ सकते हैं। विवेकानन्द का साहित्य केवल मुझे ही अच्छा लगता है, यह बात नहीं है। सोवियत रूस में काफी दिनों से विवेकानन्द एक जनप्रिय नाम है। सोवियत रूस में मेरी तरह बहुत से व्यक्ति हैं जो विवेकानन्द को प्यार करते हैं, विवेकानन्द के लेखन को प्यार करते हैं। कितना सहज फिर भी कितना सशक्त है उनका लेखन ! और मनुष्य के लिए कितनी गहरी पीड़ा है ! प्रायः नव्वे वर्ष पुराना होने पर भी उनका लेखन आज भी उतना ही तेजोद्दीप्त, उतना ही प्रेरणाप्रद है। विवेकानन्द के विषय में और भी अधिक जानने का आग्रह एवं कौतूहल मेरे देशवासियों में क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। हमलोग मानते हैं कि विवेकानन्द की विचारधारा, उनका आदर्श, उनकी रचना केवल भारतवर्ष की ही नहीं, समग्र विश्व की सम्पदा है।'

मैंन प्रश्न किया : किन्तु विवेकानन्द थे संन्यासी, धर्म-जगत के मनुष्य। मार्क्सवादी होकर भी उनके प्रति आपका एवं आपके देश के लोगों का यह आकर्षण, क्या यहाँ के आपके बहुत से मार्क्सवादी मित्रों को अवाक् नहीं करेगा ?

डा० चेलिशेव मेरे मुँह से बात प्रायः छीनते हुए बोले : 'मुझे इस देश के ऐसे किसी एक सच्चे मार्क्सवादी का नाम बताइये, जिसके लिए विवेकानन्द ग्रहण योग्य न हों ? मैं उसके साथ तर्क करने को तैयार हूँ। मेरे जो मार्क्सवादी मित्र विवेकानन्द के प्रति श्रद्धा नहीं रखते, वे संभवतः विवेकानन्द के विषय में कुछ नहीं जानते, विवेकानन्द की पुस्तकें उन्होंने नहीं पढ़ीं अथवा अज्ञतावश विवेकानन्द को वे केवल एक धार्मिक संगठक मान कर बैठे हैं। विवेकानन्द रचनावली को मैंने खूब अच्छी तरह पढ़ा है एवं इसके साथ ही उनकी कई प्रामाणिक जीवनियाँ भी पढ़ी हैं। उनके आधार पर मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि विवेकानन्द को यदि केवल एक तथाकथित धर्म प्रचारक के रूप में देखा जाय तो यह एक बड़ी भ्रांति होगी। साधारण अर्थ में एक धर्म संप्रदाय का नेता कहने से जो समझा जाता है, विवेकानन्द वह नहीं थे। वे थे इससे कहीं बहुत बड़े, और बहुत व्यापक थी उनकी विचारधारा और कर्म की परिधि। वे थे शांति, समन्वय एवं विश्वबंधुत्व के महान 'प्रोफेट'। वे थे मौलिक भावनासंपन्न एक चिन्तानायक, स्वच्छ दृष्टि संपन्न एक उदार मानव प्रेमी। धार्मिक संप्रदाय की कट्टरता अथवा संकीर्णता उनमें नहीं थी। वे थे एक असाधारण देशप्रेमी, एक वरेण्य गणतंत्रप्रेमी एवं एक महान मानवतावादी। अपने देशवासियों को उन्होंने औपनिवेशिक शृंखला से मुक्ति का मार्ग दिखाया। वे मन प्राण से विनाश चाहते थे सामाजिक अन्याय का, अवसान चाहते थे सभी प्रकार के—सामाजिक, अर्थनैतिक एवं धार्मिक—शोषण का। सभी प्रकार के विशेषाधिकार और सुविधावाद के विरोधी थे वे। सोवियत देश के लोगों में इसी से विवेकानन्द इतने जनप्रिय हैं। उन्होंने ही भारतवर्ष में सबसे पहले सर्वहाराओं के आविर्भाव का स्वागत किया

था, अपने को एक समाजवादी कह कर भी घोषणा की थी। वे स्वप्न देखते थे शोषणमुक्त, श्रेणीहीन, निश्छल, एक नवीन समाज के प्रतिष्ठापन की। इस काम को करने में अवश्य ही उन्होंने धर्म का प्रयोग हथियार के रूप में किया था।' मैंने संशोधन करते हुए कहा : हथियार नहीं, भित्ति रूप में। डा० चेलिशेव बोले : 'मार्क्सीय परिभाषा में दोनों शब्दों में पार्थक्य सामान्य है। वह जो भी हो, इस नीति के साथ कम्युनिस्टों का कोई विरोध नहीं हो सकता। लक्ष्य यदि एक हो तो मन की भिन्नता आपत्ति का कारण नहीं हो सकती। देश काल-अवस्था भेद से मत का पार्थक्य होगा ही और यह स्वाभाविक भी है। और भारतवर्ष? उसकी मिट्टी में ही तो धर्म है। इसीलिए विवेकानन्द की तरह विचक्षण समाजनायक यदि धर्म को आधार बना कर निपीड़ित, शोषित, अवहेलित मनुष्यों को सामने की पंक्ति में ले आने की चेष्टा करें, तो उसमें दोष कहाँ, विरोध का अवकाश कहाँ ?'

प्रश्न : किन्तु जो लोग दोष देखते हैं, विरोध खोज पाते हैं ?

उत्तर : ऐसा जो देखते हैं, यह उनकी अज्ञता का ही परिचायक है। वे लोग समझ नहीं पाते कि तथाकथित जिस धर्म की मार्क्स-लेनिन ने निन्दा की है, उसकी तो विवेकानन्द भी निन्दा करते हैं' वह है धर्म के नाम पर, अर्थात् धर्म के रूप में जो चलता है वह—प्रीस्टक्रैफ्ट—पुरोहिततंत्र। वह तो सचमुच ही शोषण का हथियार है—क्या भारतवर्ष में, क्या अन्य देशों में। विवेकानन्द ने जिसे धर्म कहकर प्रचार किया है, वह है मानवतावाद, मनुष्य के लिए दर्द, मनुष्य के लिए प्रेम। विवेकानन्द के लिए धर्म था गहरा मानव-प्रेम।'

प्रश्न : यह तो ठीक है। तो भी इन सब के साथ धर्म से विवेकानन्द का तात्पर्य था मनुष्य के अंतर के ऐश्वर्य के विकास से, जिसको कभी उन्होंने नाम दिया डिविनिटी - देवत्व, कभी कहा स्पिरिचुअलिटी—आध्यात्मिकता।

अध्यापक चेलिशेव : 'हाँ ठीक ही तो है। मैंने तो पहले ही कहा है, भारतवर्ष धर्म का देश—आध्यात्मिकता का देश है। एक मार्क्सवादी के रूप में मैं मानता हूँ कि एक कम्युनिस्ट को किसी भी देश की वास्तविक परिस्थितियों के चेहरे का यथार्थ रूप में विश्लेषण करना चाहिए। देश के वृहत्तर जनसाधारण में यदि धार्मिक भावावेग स्वाभाविक रूप में विद्यमान हो, तो उसका अनुधावन उचित है। एक सच्चे कम्युनिस्ट के लिए यह समझना उचित है कि तथाकथित धर्म जिस तरह प्रतिक्रियावादी लोगों के हाथ में सांप्रदायिक विभेद के अस्त्र के रूप में व्यवहृत हो सकता है, उसी प्रकार यथार्थ धार्मिक चेतना मनुष्य को कल्याणबोध में उद्बुद्ध भी कर सकती है।'

इसी समय मार्क्सीय विचारधारा के प्रति सहानुभूति शील एक दैनिक समाचारपत्र के एक संवाददाता अध्यापक चेलिशेव से साक्षात्कार लेने आए जो पहले से ही नियत था। चेलिशेव ने उन्हें बैठने को कहा। उसके बाद बोले : 'वस्तुत: धर्म के दो पहलू हैं—एक इतिवाचक और दूसरा नेतिवाचक। देश और जाति के कल्याण के लिए स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के इतिवाचक पहलू को ही चुना था। नेतिवाचक दृष्टिकोण उग्र साम्प्रदायिकता को जन्म देता है। मनुष्य-मनुष्य में द्वन्द्व-विभेद बढ़ा डालता है। केवल धर्म के ही क्षेत्र में नहीं, विवेकानन्द की चिन्तना और परिकल्पना में कहीं भी नेतिवाचक कुछ भी स्थान नहीं पाता, रवीन्द्र नाथ ने यह बात कही है। इसी से विवेकानन्द को एवं उनके गुरु रामकृष्ण परमहंसदेव को हमलोग प्रचलित अर्थ में शुद्ध धर्मनेता के ही रूप में नहीं सोचते। विश्लेषण धर्मी

किसी गवेषक के लिए भी उन्हें इस रूप में विवेचित करना उचित नहीं है। उन्होंने जिन धार्मिक उपदेशों का प्रचार किया है, उन सब के साथ किसी भी परिपक्व समाज संस्कारक की नीति का कोई पार्थक्य नहीं है, किसी सच्चे मानवतावादी चिन्तक की विचार धारा का कोई मतभेद नहीं है। रामकृष्ण परमहंस कहते हैं: "खाली पेट से धर्म नहीं होता।" "जिसका यहां नहीं है, उसका वहां भी नहीं है", और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द कहते है, 'मैं उस धर्म में विश्वास नहीं करता जो विधवा के अश्रु नहीं पोंछ सकता, क्षुधार्त के मुंह में भोजन नहीं दे सकता।" कहते हैं—"जब तक मनुष्य तो क्या, एक कुत्ता भी भूखा रहेगा, तब तक मेरा धर्म होगा उसका पेट भरना।" कहते है—"जीवन्त देवता मनुष्य का रूप धारण कर तुम्हारे सामने खड़े हैं, उनकी सेवा ही तुम्हारा धर्म है। किसी देश के किसी साम्प्रदायिक धर्मगुरु के मुंह से किसी समय इस तरह की बात किसी ने सुनी है? मैं सोचता हूँ, मार्क्सीय डायलेक्टिकल मैटेरियलिज्म इस दिशा में रामकृष्ण-विवेकानन्द के धर्म-दर्शन के बहुत समीप है। विवेकानन्द की 'काली द मदर' कविता में काली की जो कालनृत्य कल्पना है, जहां काली के तांडवनृत्य के प्रत्येक पदाघात से सृष्टि भग्न होकर चूर्ण-विचूर्ण होती जा रही है, उसका तात्पर्य है पुरानी समाज-व्यवस्था के ध्वंस होने पर नवीन समाज व्यवस्था के आविर्भाव का आह्वान कर रहे हैं विवेकानन्द। काली का नृत्य इस प्रक्रिया का प्रतीक है। विवेकानन्द की "एराइज ऐण्ड अवेक" वाणी श्रमजीवी मनुष्य के जागरण का मंत्र है। इसी प्रसंग में आपको बताऊं कि रूस के एक आधुनिक कवि ने विवेकानन्द की इस वाणी के आधार पर एक सुन्दर लंबी कविता लिखी है। रूस में न जाकर भी विवेकानंद ने जान लिया था कि वहां विप्लव की पटभूमि तैयार है एवं वहां का निपीड़ित एवं शोषित जन समुदाय स्वैराचारी जार-शासन के उच्छेद हेतु प्रस्तुत हो रहा है। इसके साथ ही विश्व के सामाजिक ढांचे में एक विराट परिवर्तन आ रहा है और उस परिवर्तन का नेतृत्व पहले रूस से ही आएगा। विवेकानन्द ने स्पष्ट भाषा में यह कहा था। परवर्ती समय में उनका वह कथन सत्य प्रमाणित हुआ। सोवियत जनगण इसी से विवेकानन्द के प्रति असीम श्रद्धावान हैं। विवेकानन्द इसी से उनके बहुत निकट के व्यक्ति हैं।'

'विवेकानन्द किसी पाखंड को प्रश्रय नहीं देते थे। वेदान्त की धार्मिक दार्शनिक भावना का आत्मीकरण करके उसे नवीन युग की आवश्यकता एवं परिस्थिति के साथ उपयोगी बनाकर उपस्थापित किया था उन्होंने। वेदांत का नाम उन्होंने दिया था "प्रैक्टिकल वेदांत।" कम्युनिस्ट लोग वेदांत के अतीन्द्रियवाद को नहीं समझ सकते। किन्तु विवेकानन्द के प्रैक्टिकल वेदान्त के साथ हमारा कोई विरोध नहीं है, वरन् सायुज्य ही है। इस प्रसंग में एक बात के उल्लेख करने की आवश्यकता है। स्वामी विवेकानन्द के धर्म दर्शन और वाणी के तात्पर्य के संबंध में, पहले रामकृष्ण मिशन के स्वामी रंगनाथानंद एवं बाद में स्वामी लोकेश्वरानंद के साथ मेरा बहुत विचार-विमर्श हुआ है। इससे मेरी विवेकानंद संबंधी जानकारी और गवेषणा अत्यंत समृद्ध हुई है।

विवेकानन्द को एक दल धार्मिक अतीन्द्रियवादी कहकर रेखांकित करता है, तो दूसरा दल विवेकानन्द की चिन्तन-भावना के साथ मार्क्सीय चिन्तन भावना का सादृश्य ढूंढ़ कर उन्हें मार्क्सवादी संज्ञा देता है। मेरे विचार से, स्वामी विवेकानन्द इसमें से कुछ भी नहीं हैं। मार्क्स के दर्शन से उनका परिचय था या नहीं—यह विवाद का विषय है। तो भी, परिचय होना असंभव नहीं हो सकता। अन्यान्य योरोपीय समाजदार्शनिकों की विचार-

धारा से उनका गहरा परिचय था—इसका प्रमाण है। किन्तु विवेकानन्द ने अपना दर्शन गढ़ा था अपनी स्वयं की मौलिक विचारधारा की भित्ति पर। श्रमजीवी मनुष्य के जागरण की व्याख्या उन्होंने अपने ही ढंग से दी है और समाज की व्याख्या भी उनकी अपनी है। सामाजिक समस्याओं के समाधन हेतु जिन सूत्रों को उन्होंने दिया है वे सब हमारे मत से आदर्शवादी (idealistc) हैं। इस विषय में हमलोगों से विवेकानन्द का पार्थक्य हो सकता है। किन्तु साथ ही यह बात भी कहूँगा, कि उन्होंने जिस रूप में विचार किया है या विश्लेषण किया है उस रूप में किसी बुर्जुआ ऐतिहासिक ने विचार नहीं किया अथवा व्याख्या करने में समर्थ नहीं हो सका। उनके धर्म में जितना अंश आदर्शवादी है, उसके हम समर्थक नहीं हैं, ठीक है, किन्तु उसकी उपेक्षा अथवा अस्वीकार भी हम नहीं करते। कारण, यह बात मैंने पहले ही कही है, देशकाल के परिप्रेक्ष्य में उनके धर्म का आदर्शवाद यदि उनके देश के मनुष्य को कल्याण के लक्ष्य की ओर बढ़ने में सहायता करता है, तो ऐसे में हम उसे अस्वीकार कैसे कर सकते हैं? असली बात है मनुष्य के प्रति मनुष्य की ममता, समाज का कल्याण एवं अवहेलित का उत्थान। यहीं पर मार्क्स और विवेकानन्द दोनों ही एक भावना के भागीदार हैं, यहीं उनका मिलन सूत्र है।'

मैंने प्रश्न किया : विवेकानन्द के गुरु रामकृष्णदेव के विषय में आपकी धारणा के पहले दो एक बार उल्लिखित होने पर भी, उनके संबंध में अपनी या अपनेलोगों की धारणा को क्या कुछ विशद रूप में स्पष्ट करेंगे?

उत्तर : 'देखिये, विवेकानन्द-अनुशीलन एवं गवेषणा के कार्य में उनके गुरु का प्रसंग स्वाभविक रूप से आएगा ही। कारण, रामकृष्णदेव के स्वप्न को ही तो रूपायित किया था स्वामी विवेकानन्द ने। इसीलिए रामकृष्णदेव भी मेरे एवं मेरे देशवासियों के लिए परम श्रद्धा के पात्र हैं। सोवियत लोग मानते हैं कि रामकृष्ण एवं विवेकानन्द की वाणी वस्तुत: अभिन्न है। पृथ्वी पर पारमाणविक युद्ध की आशंका से मानव-सभ्यता जब चरम संकट के सामने खड़ी है, तब ऐसे समय में रामकृष्ण-विवेकानन्द के पथ ने आज सर्वश्रेष्ठ फलदायक समाधान का सूत्र उपस्थापन किया है। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय मैं सोवियत सैन्य-वाहिनी के बोम्बर स्क्वैड्रन का एक नेविगेटिंग अफसर था। युद्ध की विभीषिका को मैंने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है। तृतीय विश्वयुद्ध यदि आरंभ होगा, तो द्वितीय विश्वयुद्ध से वह सहस्त्र गुना मारात्मक होगा। द्वितीय विश्वयुद्ध में केवल सोवियत रूस में ही कम से कम बीस लाख आदमी मारे गये। इसी अभिज्ञता के कारण युद्धबाजों के विरुद्ध आज विश्वव्यापी शांति, मैत्री और भ्रातृत्व के समर्थन में आंदोलन, प्रदर्शन चल रहे हैं। शांति, मैत्री और विश्व भ्रातृत्व की वाणी ही रामकृष्ण विवेकानन्द की वाणी है। वह वाणी ही आज की विपन्न पृथ्वी पर बचने का मार्ग दिखा सकती है। मैं मानता हूँ कि पारमाणविक युद्ध का आतंक आज जिस रूप में विश्व को धीरे-धीरे ग्रस रहा है, उसके परिप्रेक्ष्य में रामकृष्ण-विवेकानन्द की वाणी को संपूर्ण विश्व में फैला देने की बहुत आवश्यकता है। समकालीन भारतवर्ष एवं पृथ्वी में उनकी वाणी की प्रयोजनीयता एवं प्रासंगिकता थी, इसमें कोई संदेह नहीं है, किन्तु आज के भारत वर्ष में एवं विशेषकर आज की पृथ्वी में उसका प्रयोजन एवं प्रासंगिकता बहुत अधिक है। भारत की सीमा से बाहर इस भावादर्श को समझने के लिए आज सोवियत रूस में अनेक गवेषकों और चिन्तकों ने रामकृष्ण, विशेषकर विवेकानन्द के अनुशीलन में आत्मनियोग किया है। मुझे यह सोचकर गर्व होता है कि

अपने देश में इस कार्य में मैं अन्यतम पुरोधा की भूमिका पालन कर सका हूँ। मैं मानता हूँ कि हमारा यह कार्य समग्र मानव जाति की सेवास्वरूप है। मैं आनंदित हूँ कि इस समय रामकृष्ण-विवेकानन्द-अनुशीलन संबंधी जो अन्तर्राष्ट्रीय समीक्षा परिषद् गठित हुई है, मुझे उसका अन्यतम सह-सभापति मनोनीत किया गया है। सुना है चीन में भी इस समय विवेकानन्द-अनुशीलन आरंभ हुआ है। इस संवाद से मैं प्रसन्न हूँ। मेरे जो चीनी-कम्युनिस्ट भाई विवेकानन्द के संबंध में कार्य कर रहे हैं, उनके साथ हमारे भावों-विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है। रामकृष्ण-विवेकानन्द अनुशीलन की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के समापति अध्यापक डॉ० ए० एल० बाशम से मेरा व्यक्तिगत परिचय है। वे अवश्य ही कम्युनिस्ट नहीं हैं, किन्तु उनके साथ भी इस विषय में मत विनिमय के लिए हम आग्रही हैं। केवल ये लोग ही नहीं, पृथ्वी के किसी भी प्रांत में जो भी इस विषय में चर्चा करने के आग्रही हैं, उनके साथ घनिष्ठ सहयोगितापूर्वक हम काम करना चाहते हैं। इस प्रसंग में मुझे इस समय कई लोगों की याद आ रही है, जैसे (पूर्व) बर्लिन हामवल्ट विश्वविद्यालय के अध्यापक वि० मरगेनरथ, बुलगेरिया के सोफिया साइन्स अकादमी के अध्यापक एन० जोदोरभ, हंगरी के बुडापेस्ट साइंस अकादमी के अध्यापक जे० हारमाता एवं मंगोलिया के उलान बतर साइंस अकादमी के अध्यापक डामडिन् सूरेन। ये सभीलोग निश्चय ही समाजवादी देशों के लोग हैं एवं मेरे भी विशेष परिचित हैं। मेरी पुत्रवधू इरीना चेलिशेव भी विवेकानन्द अनुशीलन में विशेष आग्रही है। इस समय वह जिस विषय पर गवेषणा कर रही है, उसके बहुत बड़े भाग से विवेकानन्द जुड़े रहेंगे। सोवियत रूस में इस समय विवेकानन्द-गवेषणा के क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति में आने वाले लोगों में अध्यापक ए० पी० न्याचुकधानिलचुक एवं अध्यापक आर० राइवाकव अन्यतम हैं। आशा करता हूँ कि हमलोगों की समवेत प्रचेष्टा रामकृष्ण-विवेकानन्द अनुशीलन के उत्तरोत्तर विकास के क्षेत्र में उल्लेख योग्य अवदान में समर्थ होगी।

'समकालीन भारतीय साहित्य के संबन्ध में मेरा जितना ज्ञान है उसके आधार पर मैं समझता हूँ कि भारतीय साहित्य साधकों को विवेकानन्द ने बहुत अधिक प्रभावित किया है। हिन्दी लेखकों में सूर्यकान्त त्रिपाठी (निराला), सुमित्रानंदन पंत, एवं प्रेमचन्द्र, बंगला में रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द्र एवं नजरुल इस्लाम के नामों का इस प्रसंग में उल्लेख कर सकता हूँ। विवेकानन्द को तेजस्विता, गतिशीलता एवं मनुष्य के प्रति उनकी ज्वालामय ममता ने उनके समकालीन एवं परवर्ती साहित्य-शिल्पियों को आकर्षित किया था। विवेकानन्द की चेतना के सभी स्तरों से जुड़ा था मनुष्य,— उनका ईश्वर भी था इसी मनुष्य में। वे कहते थे, 'मेरा ईश्वर किसी दूर ग्रह-उपग्रह का अधिवासी नहीं है, अज्ञतावश जिसे हम मनुष्य कहते हैं, वही मेरा ईश्वर है।" मनुष्य में वे संचार करना चाहते थे एक मर्यादा, अपने भाग्य को अपनी शक्ति से गढ़ने की प्रेरणा और दुःख वेदना को उपेक्षित करने का संकल्प।'

प्रश्न: कुछ लोग कहते हैं, विवेकानन्द का मानवतावाद ईसाई आदर्श से प्रभावित है। आप इस संबंध में क्या सोचते हैं?

उत्तर: 'मेरी गवेषणा ने इस विषय में मुझे एक सुस्पष्ट सिद्धांत पर पहुँचा दिया है। मेरे विचार से, विवेकानन्द की मानवतावाद की धारणा से ईसाई मतादर्श का कोई मेल ही नहीं है। अतएव प्रभाव का प्रश्न यहां अवान्तर है। ईसाई मतादर्श मनुष्य को कर्महीनता की ओर ले जाता है, मनुष्य को भगवान के करुणाप्रार्थी भिक्षुक में परिणत कर देता है, जबकि दूसरी ओर

विवेकानन्द का मानवतावाद मनुष्य को कर्म के ज्वार में बहा ले चलता है, संघर्ष करने की प्रेरणा देता है। विवेकानन्द ने अपनी मानवतावाद की धारणा में मनुष्य की मर्यादा को ही ऊँचा उठा दिया है। इस चिन्तन में उनकी ब्रह्मचेतना ही संपृक्त थी। उन्होंने अपनी धर्मचेतना अथवा मानवतावाद के चिन्तन-मनन का उपादान संग्रह किया था प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से एवं उसी आदर्श को उन्होंने देश की सेवा में व्यवहृत किया था। औपनिवेशिक शासन में जब भारतीय जनगण का मानवाधिकार पददलित हो रहा था, तब विवेकानन्द के मानवतावाद ने उसके विरुद्ध उन्हें संग्राम करने को उद्‌बुद्ध किया था, अपनी मर्यादा, दायित्वबोध और जातीय गौरव के संबंध में सचेतन किया था। औपनिवेशिकता के विरुद्ध संग्राम में जनगण के ऐक्य की व्यग्र लालसा ने ही विवेकानन्द में श्रेणी-समन्वय की धारणा की सृष्टि की थी। धर्म की भित्ति पर मनुष्य की वह ऐक्य की धारणा आदर्शवादी होते हुए भी उनके संपूर्ण विचारादर्श का मूल थी। एवं उसकी यौक्तिकता एवं अपरिहार्यता में उनका गहरा मजबूत विश्वास था। भारतवर्ष की स्वाधीनता-प्राप्ति के इतिहास की पर्यालोचना करने पर उनके इस विश्वास की यौक्तिकता को स्वीकार करना ही होगा। केवल स्वाधीनता संग्राम ही नहीं, उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष में जो सर्वतोमुखी जागरण हुआ था, उसकी प्रक्रिया को विवेकानन्द की वाणी और आदर्श ने ही संजीवित और अनुप्राणित किया था। सोवियत रूस के मनुष्यों की दृष्टि में नवीन भारत गढ़ने वाले स्थपति के रूप में राममोहन राय अथवा महात्मा गांधी की अपेक्षा विवेकानन्द का अवदान कहीं अधिक है।'

यह कहने के बाद अध्यापक चेलिशेव ने सहसा जिज्ञासा की : 'अच्छा, विवेकानन्द ने विवाह क्यों नहीं किया ?, मैंने कहा : क्योंकि वे संन्यासी थे।

अध्यापक चेलिशेव : 'किन्तु ईसाई फादर तो करते है।'

मैं : यह आप प्रोटेस्टैन्ट धर्मयाजकों की बात कर रहे हैं। प्रोटेस्टैन्ट-मत में संन्यास का प्रचलन नहीं है। किन्तु रोमन कैथोलिक संन्यासी विवाह नहीं करते।

अध्यापक चेलिशेव : 'किन्तु भारतवर्ष में भी अनेक संन्यासियों को विवाहित देखा है।'

मैं : भारतवर्ष में इस तरह के किसी संन्यासी संप्रदाय को मैं नहीं जानता। तो भी, यह हो सकता है कि विवाहित व्यक्ति बाद में गृहत्यागी संन्यासी हो गया हो। ऐसे में, विवाहित पत्नी भी उसके लिए जननी समान है। भारत की संन्यास परम्परा में संन्यास एवं विवाह एक साथ नहीं चल सकते। संन्यासी के लिए नारी मात्र ही जननी है। स्वामी विवेकानन्द ने उसी परम्परा का निर्वाह किया है।

अंतिम बात सुन कर अध्यापक चेलिशेव मानो चौंक उठे। कहा : 'धन्यवाद। मुझे यह ज्ञात नहीं था। स्वामी रंगनाथानन्द एवं स्वामी लोकेश्वरानन्द के साथ नाना विषयों पर बातचीत होने पर भी इस विषय में कुछ पूछने में मुझे संकोच हुआ था।

इसके बाद अध्यापक चेलिशेव से मैंने अपना अंतिम प्रश्न किया : विवेकानन्द के विषय में कुछ जानने का आग्रह आप में कब से जागा ?

हँसते-हँसते अध्यापक बोले : 'वह एक इतिहास है। द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने के बाद सोवियत रूस में एक विषय खूब चर्चित था। वह था—भारत कुछ दिनों में ही स्वाधीनता प्राप्त करने वाला है। तभी से भारत के सम्बन्ध में जानने का आग्रह एवं औत्सुक्य रूस की जनता में

विशेष रूप से दिखाई पड़ने लगा। अनेक लोगों ने उस समय भारतीय भाषा, साहित्य, शिल्प और संस्कृति के विषय में पढ़ना-सुनना आरम्भ किया। इन अनेकों में मैं भी एक था। मेरा प्रिय विषय था भारतीय भाषा और, साहित्य। इस विषय में थोड़ा कुछ लिखना भी शुरू किया था। इसी समय भारत के जातीय-जागरण में रामकृष्ण-विवेकानन्द, विशेषत: विवेकानन्द की भूमिका और अवदान के संबन्ध में कुछ तथ्य मेरी जानकारी में आये। इसके पूर्व रोमाँ रोलाँ रचित विवेकानन्द की जीवनी मैंने पढ़ी थी। एक धारणा थी। इसके कुछ दिन बाद—इसी बीच भारत ने स्वाधीनता प्राप्त कर ली थी।-१९५५ ई० में मैं दिल्ली आया था। वही मेरा भारत में पहला आगमन था। मैं आया था सोवियत रूस के प्रतिनिधिदल के सदस्य के रूप में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने। दिल्ली में ही हुआ था वह सम्मेलन। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्तेजना-प्रशमन एवं विभिन्न देशों के बीच स्वस्थ प्रेम भावना एवं शांतिपूर्ण सहावस्थान के सूत्र को प्रकाशित करना इस सम्मेलन का उद्देश्य था। उस बार का वह भारत-आगमन ही मुझे ले आया था विवेकानन्द के पास एवं उनके माध्यम से रामकृष्ण के पास—जिन्होंने विश्वप्रेम और विश्वमैत्री के क्षेत्र में अपने जीवन का उत्सर्ग किया था। आश्चर्यजनक है यह प्रतीकात्मक सुअवसर। इसके बाद की कहानी मैंने "स्वामी विवेकानन्द सेन्टिनरी मेमोरियल वोल्यूम" में विस्तार से लिखी है। खूब संक्षेप में इतना ही आज कहूँगा : "१९५६ ई० के शरत् काल का एक दिन। भारतवर्ष के दक्षिणतम प्रान्त में अवस्थित कन्याकुमारी में मैं गया था। प्रस्तरमय समुद्र तट पर खड़े होकर—जहां तीन समुद्र आकर मिले हैं, वहां एक स्थान पर परम सौभाग्यवश देखा था एक अपूर्व अविस्मरणीय दृश्य—एक नवीन दिवस का आविर्भाव। समुद्रगर्भ से उत्थित प्रात:कालीन सूर्य की प्रथम किरणें त्रिसमुद्र संगम पर कन्याकुमारी मंदिर के गुम्बजाकार शिखर एवं स्तंभश्रेणियों को रंगे दे रही थीं। दक्षिण में लगभग दो सौ मीटर की दूरी पर है एक निर्जन शिलाखंड, जिस पर लहरें आकर जोर-जोर से टक्कर मार रही थीं। "यह है विवेकानन्द शिला" —कोई एक युवक बोल पड़ा था। युवक मेरे पास ही खड़ा था। बोलता ही गया वह : "यह वही शिला है जहाँ स्वामी जी ने भारत छोड़ कर दूर विदेश जाने के पूर्व तीन दिन बिताये थे। नाव में जाने का पैसा उनके पास नहीं था। कपर्दकहीन संन्यासी तैर कर पहुँचे थे इस शिला पर। जाकर बैठे थे ध्यान में। ईश्वर चिन्तन में नहीं—भारत के चिन्तन में—भारत के नवजागरण के चिन्तन में वे निमग्न हुए थे।" मैंने उससे कहा : "इस द्वीपखंड पर जाने की मेरी बहुत इच्छा हो रही है।" युवक ने जवाब दिया था : "जरा रुकिए—मैं मछुआरों के पास से एक नौका ले आता हूँ।"

'किन्तु विवेकानन्द शिला पर जाने की मेरी इच्छा इतनी तीव्र हो उठी थी कि इस युवक के लौटने तक प्रतीक्षा करने का धैर्य मुझमें नहीं था। तैर कर शिला तक जाने का मैंने निश्चय किया। आधा पथ पार करने के बाद पीछे मुड़ कर देखा एक मछली पकड़ने की नौका। उस पर वह युवक खड़ा था। वह चिल्लाकर कुछ बोल रहा था और हाथ हिला रहा था। किन्तु हवा की गति उसकी बातों को उल्टी दिशा में बहाए जा रही थी। उसके संकेत का अर्थ भी मुझे समझ में नहीं आया। जो भी हो, हमलोग प्राय: एक ही समय उस द्वीप पर पहुँचे थे एवं पत्थरों के उभारों को पकड़-पकड़ कर शिला के शिखर पर चढ़े थे।

मेरे इस नये मित्र ने एक प्रस्तर खण्ड पर स्वयं बैठते हुए मुझे भी कहा : "बैठिए यहाँ और सोचिए

उनकी बात जिन्होंने हमलोगों को नवीन जीवन का मार्ग दिखाया है।" मैंने उसका निर्देश पालन किया था। फेनिल समुद्र तरंगों के निर्घोष के सिवा वहां और कोई शब्द नहीं था।

'विवेकानन्द के विषय में जो कुछ पढ़ा था, सब इस समय मेरे मन में उठने लगा। रवीन्द्रनाथ की वह बात—यदि कोई भारतवर्ष को जानना चाहता है तो उसे विवेकानन्द को पढ़ना ही होगा; विवेकानन्द ने युवकों में जगायी है मातृभूमि के प्रति प्रेम और भक्तिमयता की प्रेरणा, अतीत को परम्परा के संबंध में गर्व-बोध एवं उज्ज्वल भविष्य की प्रत्याशा। यह सच है। विवेकानन्द रचनावली मैंने पढ़ी है - एक बार नहीं, बार-बार और हर बार उसमें ऐसा नया कुछ पाया है, जिसने भारतवर्ष को गहराई से समझने में मेरी सहायता की है - सहायता की है उसके दर्शन, और जीवन दर्शन के रूप, उसके जनगण के अतीत और वर्तमान के आचार-आचरण एवं उसके भविष्यत् की आशा आकांक्षा की धारणा करने में।

'संभवत: यहीं'—भारतवर्ष की प्रान्तसीमा में इस निर्जन शिला खंड पर बैठ कर विवेकानन्द ने उच्चारण किया था : शौर्य का सूर्योदय हुआ है; मेरी मातृभूमि जागृत होगी ही; कोई इसका रोध नहीं कर सकेगा। भारतवर्ष अब पुन: निद्रित नहीं होगा।

'मैं उनके जीवन की बात तभी से सोचने लगा, —जानने का आग्रह उसी दिन से जागा।'

—×—

सद्य प्रकाशित

नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं परलोक में जीव का अवस्थान किस किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिच्छवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक-डॉ० आशीष बनर्जी

तद्वैराग्य जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः।
देहादि ब्रह्म पर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि ॥ २१

अपनी देह से लेकर ब्रह्मा की देह तक अनित्य भोग-वस्तुओं में दोष-दर्शन एवं श्रवण के फलस्वरूप मन में जो विषयत्याग की इच्छा होती है इस इच्छा को वैराग्य कहा जाता है। २१

मानव शरीर अनित्य है यह सभी के प्रत्यक्ष का विषय है। पुण्य कर्म के द्वारा मनुष्य ब्रह्मा हो सकता है; परन्तु ब्रह्मा का शरीर दीर्घ स्थायी होने पर भी चिरस्थायी नहीं होता है; ब्रह्म लोक में प्राप्त सुख का भी एक न एक दिन अवसान होगा। कुछ वस्तुओं की अनित्यता हम स्वयं देखकर जानते हैं; और कुछ वस्तुओं का मिथ्यापन शास्त्र अथवा ज्ञानी व्यक्तियों से सुनकर स्थिर किया जाता है।

विरज्य विषयव्राता द्दोषदृष्ट्या मुहुर्मुहुः।
स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसाः शम उच्यते ॥ २२

पुनः पुनः विषयों में दोष दर्शन के द्वारा विषय समूह में वैराग्य आने के फलस्वरूप मन की अपने लक्ष्य ब्रह्म में जो स्थिति होती है, उसे शम कहा जाता है। २२

जीव का स्वलक्ष्य ब्रह्म है। "ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।" मू. २/२/४

विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके।
उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः।
बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरुत्तमा ॥ २३

ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय समूह को भोग के विषय से खींचकर अपने अपने गोलकों में स्थिर भाव से रखने को दम कहा जाता है। (दम के साधन से शम साधित होता है।) चित्तवृत्तियों को बाह्य विषयों में परिणत न होने की अवस्था को उपरति कहते हैं। २३

सहनं सर्वदुःखानाम प्रतीकारपूर्वकम्।
चिन्ता विलाप रहितं सा तितिक्षा निगद्यते ॥ २४

किसी प्रकार का दुःख क्यों न उपस्थित हो, उसके लिए मन में कोई चिन्ता न करके अथवा दुःख की बात दूसरों के सामने प्रकाश न करके एवं दुःख के प्रतिकार के लिए किसी प्रकार की चेष्टा न करके सहन करते रहने को तितिक्षा कहते हैं।२४।

मनुष्य आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक ये तीन प्रकार के दुःख भोग करता है। शारीरिक एवं मानसिक कष्ट भोग को आध्यात्मिक दुःखं कहते हैं। शीत, ग्रीष्म, वृष्टि, वायु आदि से प्राप्त दुःख आधिदैविक, एवं किसी प्राणी द्वारा प्राप्त दुःख आधिभौतिक कहलाता है। इन त्रिविध दुःखों को त्रिताप कहा जाता हैं।

शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम्।
सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते ।२५।

गुरु के उपदेश एवं वेदान्तशास्त्र की शिक्षा को सत्य जान कर दृढ़ता के साथ अन्तर में धारण करने को ज्ञानी गण श्रद्धा की आख्या देते हैं। इस श्रद्धा के द्वारा आत्मस्वरूप की उपलब्धि होती है॥ २५

सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वथा।
तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम् ।२६

सभी समय, सब प्रकार से बुद्धि को शुद्ध ब्रह्म में स्थिर रखना, समाधान कहलाता है। कौतूहलवश वेदान्त तत्व की आलोचना करने के फलस्वरूप मन में जो तृप्तिलाभ होता है, उसे समाधान नहीं कहा जा सकता॥ २६

शास्त्रपाठ के फलस्वरूप एक प्रकार की मानसिक तृप्तिलाभ हो सकती है; किन्तु उसमें डूबने पर ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता।

अहंकारादि देहान्तान्बन्धानज्ञानकल्पितान्।
स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता।।२७।।

आत्मस्वरूप की उपलब्धि की सहायता से, अविद्या से उत्पन्न सूक्ष्म अहंकार से आरम्भ कर स्थूल देह तक सभी बन्धनों से मुक्तिलाभ की इच्छा मुमुक्षुता नाम से जानी जाती है। २७

मन्दमध्यमरूपापि वैराग्येण शमादिना।
प्रसादेन गुरोः सेयं प्रवृद्धा सूयते फलम् ॥२८॥

मुक्ति की इच्छा योग्यता अनुसार किसी में थोड़ी, किसी में मध्यम भी हो तो वह अल्प या मध्यम मुमुक्षुता, वैराग्य एवं शमदमादि की सहायता से एवं गुरु की कृपा द्वारा भविष्य में तीव्ररूप धारण कर आत्मसाक्षात्कार रूप फल उत्पन्न करती है। २८

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते।
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः ॥२९॥

परन्तु जिस साधक में वैराग्य एवं मुमुक्षुता पूर्ण मात्रा में विद्यमान रहती है, उसी साधक का शमादि साधन सार्थक अर्थात् मोक्ष में सहायक होता है। २९।

एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः।
मरौ सलिलवत् तत्र शमादेर्भानमात्रता ॥३०॥

जिन साधकों में वैराग्य एवं मुमुक्षुता—इन दोनों साधनों की अल्पता रहती है, उनकी शमदमादि—साधनों की चेष्टा मरुस्थल में जल-प्रतीति के समान आभासमात्र ही समझना चाहिये।३०।

मरुस्थल में जल प्रतीति मरुस्थल को किंचित-मात्र भी भिगो नहीं पाती। उसी प्रकार वैराग्य एवं मुक्तिलाभ की तीव्र आकांक्षा अन्तर में न रहने पर शम-दम आदि साधना एक दिखावा मात्र रह जाती है; उससे साधक का कोई भी आध्यात्मिक कल्याण नहीं होता।

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥
स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः ॥३१

मोक्ष के साधन समूह में भक्ति ही श्रेष्ठ है। अपने वास्तविक स्वरूप का चिन्तन 'भक्ति' कहलाता है। कोई कोई, आत्मा एवं परमात्मा के तत्व-विचार को 'भक्ति' कहते है। ३१

अनादि अविद्या से उत्पन्न दृष्ट अनात्म से स्वस्वरूप को पृथक् करने के विचार को अद्वैतवादी भक्ति शब्द द्वारा बतलाते हैं।

उक्तसाधनसम्पन्नस्तत्वजिज्ञासुरात्मनः।
उपसीदेद्गुरुं प्राज्ञं यस्माद्बन्धविमोक्षणम् ॥ ३२

पूर्वोक्तसाधन सम्पन्न मुक्तिकाम व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को जानने की इच्छा लेकर ब्रह्मज्ञ गुरु के समीप उपस्थित होंगे। इस प्रकार गुरु के उपदेश द्वारा संसारबंधन से मुक्ति सम्भव है (संसारबंधन का हेतु अज्ञान का नाश होता है)॥ ३२

गुरु के लक्षण :

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः।
ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः।
अहैतुकदयासिन्धुर्बन्धुरानमतां सताम् ॥ ३३

वेदज्ञ, निष्पाप, कामनाशून्य, ब्रह्मज्ञ पुरुष, जो बाह्य विषयों को त्याग कर ब्रह्म चिन्ता में मग्न, शान्त, धुआँ रहित जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी अहेतुक दयापरायण (वे) शरणापन्न सज्जनों के बन्धु स्वरूप हैं। ३३

तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्व-प्रश्रय-सेवनैः।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेत् ज्ञातव्यमात्मनः॥ ३४

इस प्रकार के गुरु को भक्तिपूर्वक प्रणाम, विनम्रता एवं सेवाद्वारा प्रसन्न कर उनके निकट जाकर अपना ज्ञातव्य इस प्रकार पूछे। ३४

*

 - 2 MAY 1990

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक--स्वामी विदेहात्मानन्द

एक दिन राखाल महाराज के एक शिष्य को उन्होंने कहा था –"देख ! किसी किसी दिन मन की अवस्था ऐसी रहती है कि जो दिखता है वह झट से मन में बैठ जाता है। मैंने तो कितनी ही बार ठाकुर की समाधि देखी है, परन्तु एक दिन उनकी समाधि में जो मूर्ति देखने को मिली उसके साथ किसी अन्य मूर्ति की तुलना नहीं हो सकती। उस दिन ठाकुर की देह का रंग कितना बदल गया था ! मुखमण्डल पर अभय और करुणा-मिश्रित एक ऐसा भाव था कि क्या कहूँ ! अब भी वह मूर्ति मैं नहीं भूल सका हूँ। तुम लोगों ने जो चित्र छपवाया है, वह मूर्ति उससे भी अधिक सुन्दर थी ! वह मूर्ति हम चार लोगों ने देखी थी।"

राखाल महाराज के शिष्य—उस समय आप लोग कौन कौन उपस्थित थे ?

लाटू महाराज – मैं था, राखाल था, भवनाथ था और योगीन भाई था।

राखाल महाराज के शिष्य—कौन सी बात कहते कहते उस दिन उन्हें समाधि लग गयी थी ?

लाटू महाराज—(उनके समक्ष) अपनी व्याकुलता कैसे व्यक्त करनी चाहिए, उस दिन यही दिखाते हुए वे समाधि में चले गये थे।

राखाल महाराज के शिष्य – वे कितनी देर तक समाधिस्थ रहे ?

लाटू महाराज—अधिक नहीं, यही कोई दस-पन्द्रह मिनट।

पता नहीं, कहीं उस दिन की समाधिमूर्ति के ध्यान में ही तो उन्होंने अपना सारा जीवन नहीं बिता दिया था ! तथापि वे ठाकुर की समाधिमूर्ति का अवलम्बन करके ही ध्यान-धारणा में अग्रसर हुए थे, इस विषय में हमें कोई सन्देह नहीं।

एक दीक्षित भक्त ने एक दिन लाटू महाराज से पूछा—'महाराज ! क्या इष्टमन्त्र और इष्टमूर्ति में पार्थक्य रखकर भी साधना-पथ में आगे बढ़ा जा सकता है ?' वे भक्त काली-रूप के अनुरागी थे, पर उनके कुलगुरु ने उन्हें वैष्णवमन्त्र प्रदान किया था। इसीलिए उन्होंने यह प्रश्न उत्थापन किया था।

लाटू महाराज—तुम्हारा मन जिसमें अधिक लगे, उसी को लेकर जोर से साधना में लग जाओ। मुझसे ये सब बातें पूछने की क्या जरूरत है ? यदि तुम्हारा मन रूप में तुरन्त बैठ जाता हो तो तुम रूप का ही ध्यान लगाओ; और यदि मन्त्र में अधिक आनन्द मिले तो मन्त्र को ही लेकर लग जाओ। परन्तु एक को ही लेकर लगो। लगे न रहने पर इष्ट का साक्षात्कार न होगा, और इष्ट का दर्शन न पाने तक मन का संशय नहीं जाएगा।

भक्त—कौन सा लेकर लगूँ, यह समझ नहीं पा रहा हूँ, महाराज ?

लाटू महाराज—यही करते करते तो तुम्हारे चालीस वर्ष निकल गये। अब कब जप ध्यान करोगे ? वे कहा करते थे—'तीस के पहले ही जपध्यान में लग जाना अच्छा है।' जितनी कम आयु में लगा जायगा, उतना ही अधिक समय मिलेगा। ज्यादा उमर में लगने पर स्वास्थ्य बिगड़ जाने की सम्भावना है। शरीर एक बार टूट जाय तो फिर तपस्या नहीं हो सकती। क्रमशः